वनौषधि विशेषांक (तृतीय भाग) की विषयानुक्रमणिका

चकोतरा	1	चिल्ला नं0 2	64
चचेंड़ा	2	चीकू	65
चचेंड़ा (जंगली)	3	चीड़	66
चना	4	चीड़ (सनोवर, कतरान)	70
चन्दन	8	चुकन्दर	72
चन्दन (लाल)	12	चुपरी आलू	73
चमेली	14	चुरहर	73
चम्पा (पीला)	17	चूका	73
चम्पा (श्वेत)	21	चेंच (बड़ी)	75
चव्य	22	चेंच (छोटी बहुफली)	75
चांगेरी	24	चेना	76
चाकसू	26	चोपचीनी	77
चात्तिक	28	चोबहयात	81
चाय	28	चोधारा	82
चालटा	32	चौपतिया	82
चालमोगरा नं0 1	33	चौलाई	83
चालमोगरा नं0 2 और 3	36	छड़ीला	87
चावल	37	छतिवन	88
चिउरा	42	छत्री	90
चित्रक (श्वेत और रक्त)	43	छिरबेल	91
चित्रक (काला या नीला)	50	छोंकर	93
चिनाई घास	51	जंगली अंगूर	94
चिनार	51	जंगली अखरोट	94
चियन	51	जंगली अदरख	95
चिरई गोड़ा	52	जंगली उशवा	95
चिरपोटी	53	जंगली कालीमिर्च	96
चिरवल	53	जंगली गूलर	97
चिरायता	54	जंगली घुइयां (अरबी)	98
चिरायता छोटा	57	जंगली जायफल	98
चिरायलु	59	जंगली प्याज	99
चिरयारी	59	जंगली बादाम	101
चिरौंजी	60	जंगली मदनमस्त	102
चिलगोजा	61	जटामांसी	103
चिलबिल	62	जदवार	107
चिल्ला नं0 1	64	जमराशी	109

जमालगोटा	110	जैंत	182
जिमीकन्द (सूरण)	116	जैतून	184
जमीकंद (जंगली)	120	जोंकमारी	187
जरदालु	121	जोगीपादशाह	188
जरायुप्रिया	123	झाऊ	189
जराबंद तबील	124	झाऊ लाल	191
जरूल	124	झामर बेल	192
जलकुम्भी	125	झुनझुनिया	192
जल जम्बुआ	126	टंकारी	193
जल धनियां	127	टगरपादुका	194
जल नीम	130	टमाटर	195
जल पीपली	133	टांगतैल	198
जल सिरसं	136	टिंडे	199
जलाधारी	136	टोरकी	199
जलापा	136	डिकामाली	200
जव	137	डिजिटेलिस	203
जवाशीर	146	ढाक	206
जवासा	147	ढाक (पलाश) लता	215
जामुन	150	ढोल–समुद्र	216
जायफल	156	तगर देशी	216
जिंगिनी	161	तगर विदेशी	219
जिंतियाना	162	तगर पिण्डी	219
जिम	163	तमाखू	220
जियापोता	164	तम्बाकू जंगली	227
जीवन्ती	165	तरबूज	228
जीरा (श्वेत)	166	तरवड़	231
जीरा (स्याह)	170	तरुलता	233
जीरा काला	172	तवाखीर	233
जीवन्ती नं0 1	173	ताड़	234
जीवन्ती नं0 2	175	ताम्बूल	237
जुआर	175	ताराली	243
जुमकी बेर	177	ताल मखाना	243
जूट	177	तालीस पत्र नं0 1	246
जूट (बड़ी)	178	तालीस पत्र नं0 2	248
जूफा	179	तालीस पंत्र नं0 3	249
जूही (श्वेत व पीती)	180	तितली बूटी	250
जूही पालक	181	तितपाती	251

तिनिश	251
तिपाती	252
तिरनोई	252
तिल	253
तिलिया कोरा	261
तुम्बरू (नेपाली धनियाँ)	261
तुरमुस	263
तुलसी	263
तुलसी कपूरी	270
तुलसी बुबई	270
तुलसी अर्जकी (वन तुलसी)	273
तुलसी रामा	275
तुलसी मरूवा	276
तुलसी दवना	277
तुलसी मूत्रल	278
तुलसी वालंगा (तुख्म वालंगा)	278
तून	279
तृण चाय	281
तेंदू (काला)	281
तेंदू काक (काकतेंदू)	283
तेजपात	284
तेजबल	285
तोदरी	287
तोरई	288
त्रायमाण नं01	289
त्रायमाण नं0 2	291
थंथार	293
थनैला	294
थकार	294
थूहर नं0 1 (सेहुण्ड)	294
थूहर नं0 2 (चौधारा)	302
थूहर नं0 3 (तिधारा)	302
थूहर नं0 4 खुरासानी (सातल)	304
थूहर नं0 5 (तितली सातला)	306
थूहर नं0 6 (थोर, सुर)	306
थूहर नं0 7 (हिर्स स्याह)	307
थूहर नं0 8 (नागफनी)	307
थूहर नं0 9 (पंचकोनी नागफनी)	310
थूहर नं0 10 (हडजोड)	311
दन्ती (छोटी)	313
दन्ती (बड़ी)	316
दन्ती (बड़ी) भेद नं0 1 (चन्द्रजोत, रतनजोत)	317
दन्ती बड़ी भेद नं0 2 (लाल चन्द्रजोत)	319
दरियायी नारियल	320
दरूनज अकरबी	321
दशमूली	322
दाक	323
दाद मर्दन	323
दादमारी नं0 1	324
दादमारी नं0 2	324
दारुहल्दी	325
दारूहल्दी (लता) मलाबारी	334
दालचीनी	334
दालमी	339
दुकू	340
दुद्धि (छोटी)	340
दुद्धि (बड़ी) नागार्जुनी	346
दुधली	348
दूधिया लता	349
दूधिया हेमकन्द	350
दूब	351
देवदार	355
दोडक	358
धतूरा (काला व श्वेत)	359
धनियां	375
धमासा	384
धव	387
धामन	388
धाय	389
धोल	391
धौरा	392

चंगेल–देखिये–खुब्बाजी। चंचु (चेबुना, चेचुक)=चेंच (बहुफली या हिरनखुरी)। चंदन=चन्दन। चंपा=चम्पा। चंबेली=चमेली। चंदमरवा=सर्पगन्धा। चंद्रस=कहरुवा। चंवला=लोबिया। चंसूर=हालों। चकवड़–देखिये–पंवाड। चकशोनी–देखिये–काकजंघा। चकसू–देखिये–चाकसू।

चकोतरा (Citrus Decumana)

फलादिवर्ग एवं जम्बीर कुल (Rutaceae) के बिजौरा जाति के इसके वृक्ष, बिजौरा नींबू के वृक्ष जैसे ही छोटे आकार के सदा हरे–भरे रहते हैं।

पत्र–कागजी नींबू के पत्र जैसे ही किन्तु उनसे अधिक चौड़े, बिजौरा के पत्र से छोटे, अग्रभाग में नुकीले, व पृष्ठभाग में मृदु रोमयुक्त होते हैं।

पुष्प–वसंत ऋतु में श्वेत वर्ण के, बड़े 4 पंखुड़ियों से युक्त एवं सुगंधित होते हैं। पुष्पों को बहार नारंज या गुलकरना कहते हैं।

फल–शरद ऋतु में, बड़े आकार के, बड़े गोल खर्बूजे या ताड़ के फल जैसे, मोटी खुरदरी त्वचा या छाल से युक्त, कच्ची अवस्था में हरे, स्वाद में कडुवाहट लिये हुए खट्टे तथा पकने पर पीले एवं मधुराम्ल हो जाते हैं। फल के भीतर संतरे की भांति किन्तु बड़ी–बड़ी श्वेत रंग की फांकें होती हैं तथा बीज बिजौरा के बीज जैसे ही, किन्तु उनसे कुछ छोटे होते हैं।

वास्तव में यह मलयद्वीप पुंज एवं खासकर बटाविया (Batavia) देश का निवासी है। इसीलिये इसे बतावी नींबू भी कहते हैं। किन्तु भारतवर्ष में भी यह कई वर्षों से, खासकर उष्ण प्रदेशों तथा विशेषकर बंगाल और दक्षिण के प्रदेशों के बाग–बगीचों में बहुतायत से लगाया जाता है और खूब होता है।

नोट– ध्यान रहे चरक ने हृद्य, दीपनीय एवं श्वास हर गणों में–जिस अम्लवेतस की गणना की है, तथा सूत्र स्थान अ. 25 में जिसके विषय में "अम्लवेतसो भेदनीय दीपनीयानुलोमिक वातश्लेष्म हराणाम्" ऐसा कहा है; यह चकोतरा वही है; अम्लवेतस नहीं है। यद्यपि इसके भी गुणधर्म वैसे ही हैं। इसके विषय में वनौषधि विशेषांक के प्रथम खण्ड में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। अम्लेवत के अभाव में इसे ले सकते हैं।

नाम–

सं०–करुण, मधु कर्कटी, शतवेधी (अपनी तीक्ष्णता से गला देने वाला, यह लोहे की सुई एवं मांस को भी बहुत शीघ्र गला देता है)।

हि०–चकोतरा, करेना या कन्ना नींबू, बतावी नींबू, सदाफल, नारंज, गलगल इ०।

म०–महा नींबू, गोड़ महालुंग, पोपनस इ०।

गु०–चकोतरुं पपनस। बं०–बताबि लेबू।

अं०–पोमेलो (Pomelo)। ले०–साइट्रक डेक्युमाना।

रासायनिक संघटन–फल में साइट्रिक एसिड, गंधकाम्ल एवं शर्करा तथा फल की छाल में–एक सुगन्धित उड़नशील तैल होता है।

प्रयोज्य अंग–फल, फल का छिलका, पत्र, फूल आदि।

चाकोतरा नीम्बू (Citrus Decumana Linn)

गुणधर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, अत्यम्ल, विपाक में अम्ल, शीतवीर्य (वस्तुतः यह उष्ण वीर्य है)–कफवात शामक, पित्तवर्धक, रोचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, भेदन, हृदयोत्तेजक, मूत्रल, आमदोष हर तथा अरुचि, अग्निमांद्य, अजीर्ण, विबन्ध, गुल्म, प्लीहा, रक्तपित्त,कास, श्वास, भ्रम, यकृत्-वृद्धि, हिक्का, मूत्रकृच्छ्र, उदावर्त्त, मेद आदि नाशक है।

इसके रस में शक्कर मिलाकर लेने से पित्त–प्रकोप की शांति, रक्तोद्वेग में कमी एवं मदात्यय की निवृत्ति होती मन प्रसन्न होता है। नजेला तथा कास पर फल के अन्दर की फांकों के ऊपरी श्वेत छिलके को निकाल एवं बीजों को दूर कर, ऊपर थोड़ी खांड़ बुरक कर, आग पर सेंक कर चूसते हैं। पित्तज या उष्णता जन्य उन्माद पर इसका रस नित्य प्रातः पिलाते हैं। उरःशूल, कटिशूल एवं अन्य बात विकारों पर–इसके रस में जवाखार व मधु मिला सेवन कराते हैं।

नोट–ध्यान रहे, इसका रस शीघ्र ही बिगड़ जाता है। इसे ताजा ही काम में लाना चाहिये। इसे अधिक समय तक सुरक्षित रखना हो तो–रस को कुछ देर तक पड़ा रहने दें। जब उसका जम जाने वाला हिस्सा पृथक् हो जाय, तब वस्त्र में छानकर बोतल में गले तक भर ऊपर थोड़ा बादाम तैल डाल दें। अथवा बोतलों को औटते हुए पानी में 16 मिनट तक रखकर फिर उनमें कार्क लगा दें तो और भी उत्तम होगा। अथवा मंदाग्नि पर उसका पानी उड़ाकर रस को गाढ़ा कर लें। अथवा रस को ऐसे शीत स्थान पर रखें, जिसमें उसका जलीयांश जम जाय तथा अर्क मात्र रह जाय। इस प्रकार गुण में यह पहले से भी बढ़ जाता है। (आ० वि०कोष)

प्लीहा पर– फल की फांकों का अचार बनाकर खाते हैं। खुजली पर–इसके रस में बारूद मिलाकर लगाते हैं।

फलों का ऊपरी छिलका–दीपन, उदरकृमि, उदरशूल एवं वात नाशक और वेदना–स्थापन है।

आमाशय के विकारों पर–छिलकों के टुकड़े कर सिरके में अचार मुरब्बा बनाकर सेवन करने से आमाशय सबल होता है, व शूल आदि की निवृत्ति होती है। वातज सिर पीड़ा पर–छिलकों को पीस कर लेप करते हैं। आंत्रकृमियों के उत्सर्जनार्थ–छिलकों को महीन पीसकर उसमें जैतून का तैल मिला गरम जल से पिलाते हैं।

हृदयोद्वेष्टन (हृद्देश में–पीड़ा एवं जलन हो, तो)–छिलकों को गरम जल में पीस छानकर पिलाते हैं। यह हृल्लास एवं वमन पर भी उपयोगी है।

प्रतिश्याय तथा हृल्लास (मिचली) पर– छिलकों का शुष्क चूर्ण पानी के साथ थोड़ा–थोड़ा दिन में कई बार पिलाते हैं। छिलकों का शर्बत शांतिदायक है।

फूल–भवके द्वारा केवल फूलों का ही अर्क खींच लें। इसे अर्कबहार कहते हैं। अथवा–अर्कबहार की पूर्ण विधि इस प्रकार है– इसके पुष्प 5 सेर, गुलाब पुष्प 1 सेर, सौंफ, मुनक्का बीज रहित और अंगूर 15–15 तोला, ऊद, बहमन लाल, शकाकुल मिश्री 1–1 तो० इन सबको 15 सेर पानी में 24 घंटे भिगोने के बाद, 12 सेर तक अर्क खींच लें। अर्क खींचते समय अम्बर 1 माशा 6 रत्ती की पोटली, अर्क नाली के अन्त में बांध देवें। मात्रा– 6 तोला तक सेवन करें–यह उष्ण, रूक्ष, सौमनस्य जनन, मस्तिष्क दौर्बल्य एवं हृद्रोग नाशक, क्षुधावर्धक, कामोद्दीपक, छाती की पीड़ा, वातजन्य उदरशूल, मूर्च्छा, तृषा आदि में अत्यन्त उपयोगी है। (यू० चि० सा०)

प्रतिश्याय में– फूलों को सूंघते रहने से लाभ होता है।

कपड़ों को कीड़ों से बचाने के लिये इसके फूलों को या छाल के टुकड़ों को उनमें रखते हैं।

पत्र– इसके पत्ते–आक्षेप–शामक एवं संज्ञास्थापन हैं; पत्र-स्वरस–मूर्च्छा, कम्प, आक्षेप आदि वातविकारों पर तथा प्रतिश्याय में भी सेवन कराते हैं।

बीज–इसके बीज कृमिघ्न तथा विषनाशक हैं। कीटादि जंगम विष–निवारणार्थ बीज–चूर्ण 7 माशे तक पानी के साथ पिलाते हैं।

मूल–इसके पेड़ की जड़ की छाल का क्वाथ पिलाने से ज्वर दूर होता है।

नोट–मात्रा–फलों का रस 3 मा० से 5 तो० तक। छिलका 3 से 5 मा० तक। पत्र स्वरस 6 मा० से 1 तो० तक।

खाली पेट इसके सेवन से यकृत निर्बल तथा आमाशय कमजोर होता है। हानि निवारण के लिये शक्कर, नमक, कालीमिर्च और शहद देते हैं।

विशिष्ट योग– तैल नारंज–इसके ताजे पीले छिलकों को या फलों को तिल–तैल में डालकर धूप में रक्खें। 7 दिन बाद उन्हें निकाल कर पुनः नये फूल या छिलके उसी तैल में डाल रक्खें। इस प्रकार तीन सप्ताह तक करने के बाद तैल को छान रक्खें।

मात्रा–1 माशे तक पीने तथा ऊपर से मालिश करने से शीतल जंगम विष उतर जाता है। (आ० वि० को०)

(चगेर देखिये = खुब्बाजी)

चचेंड़ा (Trichosanthes Anguina)

शाकादिवर्ग एवं कोशातकी कुल (Cucurbitaceae) की इसकी लता–तुरई लता जैसी, वर्षायु तथा बहुत फैलने वाली होती है। पत्र–पंचकोण विशिष्ट, हृदयाकार, खुरदरे, दोनों पृष्ठों पर रोमयुक्त, पुष्प–वर्षा ऋतु में, पीतवर्ण के, पांच पंखुड़ी वाले, छोटे–छोटे; पंखड़ियों के अग्र भाग पर सूक्ष्म तंतुओं के गुच्छे से होते हैं। फल– 1–4 फुट तक लम्बे, 1½-2 इंच ब्यास के, बेलनाकार चमकीले, सर्प सदृश, कच्ची दशा में हरे श्वेत धारियों से युक्त तथा पकने पर नारंगी रंग के हो जाते हैं। फल भी वर्षाकाल में लगते हैं। कच्चे फलों का शाक उत्तम स्वादिष्ट एवं पथ्य होता है। जैसे उत्तर भारत व बंगाल में परवल पथ्य मानते हैं, वैसे ही महाराष्ट्र और गुजरात में इसे पथ्य माना गया है। किन्तु परवल की अपेक्षा यह कुछ हीन गुणों वाला है (किंचित् गुणैर्न्यूनः पटोलतः– भा० प्र०)। बीज–करेले के बीज जैसे होते हैं।

यह है तो दक्षिण–पूर्व एशिया का मूल निवासी, किन्तु भारत में न्यूनाधिक प्रमाण में सर्वत्र बोया जाता है। दक्षिण के प्रदेशों में तथा गुजरात में अधिक होता है।

चचेंड़ा (Trichosanthes Anguina Linn.)

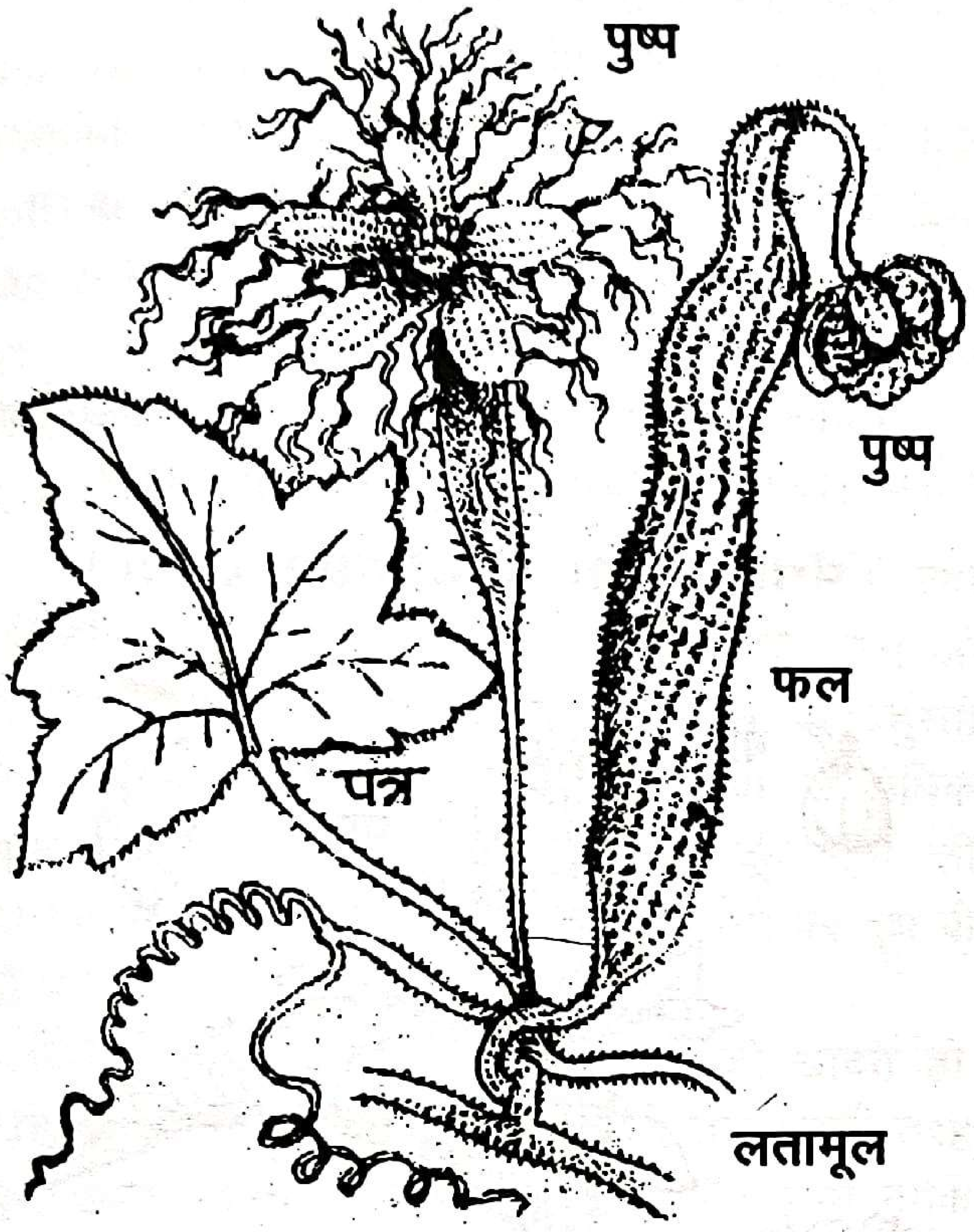

नोट– यह मीठा और कड़वा (जंगली) भेद से दो प्रकार का है। प्रस्तुत प्रकरण में मीठे का वर्णन है। कड़वा या जंगली चचेंड़ा आगे के प्रकरण में देखिये।

नाम–

सं0–चिचिएड, श्वेतराजि, सुदीर्घफल, गृहकूलक।
हि0–चचेंड़ा, चिचिंडा, गलरतोरी। म0--पड़वल (गोड़), टर कांकड़ी। गु0-- पंडोलु। बं0–चिचिंड़ा, हॉपा। अं0 स्नेक गोर्ड (Snake gourd) ले0–ट्रायकोसेंथिस ऐंग्विना।

रासायनिक संघटन– इसमें जल 95, खनिजपदार्थ 0.7, प्रोटीन 0.6, बसा 1.3, कोर्बोहाइड्रेट 4.4, कैल्शियम 0.05, फासफोरस 0.02, तथा प्र0 श0 ग्राम लोहा 1.3 मिलीग्राम, विटामिन ए 160 इ0 यू0, व विटामिन सी नाममात्र होता है।

गुणधर्म व प्रयोग–

लघु, स्निग्ध, मधुर, तिक्त, विपाक में मधुर, शीतवीर्य तथा रोचन, दीपन, पाचन, हृद्य अनुलोमन, बल्य, पथ्य, कफपित्तशामक, रक्तशोधक, ज्वर, अरुचि, अग्निमांद्य, आमदोष, विबन्ध, रक्तविकार, कास, कृमि, शोथ आदि नाशक है। क्षयरोग, ज्वर, कुष्ठ एवं रक्तविकारों में पथ्य रूप से यह सेवन कराया जाता है।

रेचनार्थ–इसके पके फल का प्रयोग तथा कृमि रोग पर इसके बीजों का प्रयोग किया जाता है।

मात्रा– स्वरस 1–2 तो0 तथा बीज चूर्ण 1–2 माशे तक। इसके पत्ते– पित्तशामक हैं। पंचांग कफघ्न, तथा मूल रेचक है।

नोट– इसका सेवन अधिक प्रमाण में करने से यह विशेषतः शीत प्रकृति वालों के आमाशय को विकृत कर उदर, मस्तिष्क एवं कामेन्द्रिय को निर्बल कर देता है।

चचेंड़ा (जंगली) (Trichosanthes Cucumerina)

गत प्रकरण के चचेंड़ा का ही यह एक जंगली भेद है। इसकी लता भी उसी प्रकार की होती है, किन्तु पत्ते कुछ छोटे तथा फल बहुत ही छोटे 1–3 इंच लम्बे परवल जैसे होते हैं। ये फल कड़वे होने से ये कडू परवल कहलाते हैं। इसकी लता में एक प्रकार की उग्र गन्ध आती है। फूल व फल वर्षा से शीतकाल तक होते हैं। यह प्रायः समस्त भारत के जंगलों में विशेषतः दक्षिण के मलावार प्रान्त में तथा बंगाल में भी पाया जाता है।

नाम–

सं0–कटुपटोल। हि0–चचेंड़ा जंगली, कडुवा चचेंड़ा, कडुवा परवल। म0–रान (कडु) पड़वल। गु0–कड़वी पाड़र, कड़वी पटोल। बं0–बनचिचिंगा, वन पटोल। ले0 ट्रायकोसेन्थिस क्युक्युमेरिना।

गुणधर्म व प्रयोग–

विरेचक, वामक, रक्तप्रसादक है। रक्तविकार जन्य रोगों में तथा अपचन या अजीर्ण में–कच्चे फलों को शीत निर्यास या क्वाथ शक्कर मिलाकर देते हैं।

पत्र–स्वरस वामक है। बालों के झड़ने या गंज रोग पर पत्र–स्वरस लगाया जाता है। पैत्तिक ज्वर में– पत्र–चूर्ण व धनियां का क्वाथ बनाकर पिलाते हैं। यकृत्–विकार एवं परावर्तित ज्वरों (विषम ज्वरों) में पत्ररस का मर्दन यकृत् स्थान पर व समस्त शरीर पर किया जाता है।

पंचांग–इसका पंचांग हृद्य, पौष्टिक धातुपरिवर्तक एवं ज्वरघ्न है।

हठी या प्रबल ज्वर में–इसके पंचांग चूर्ण तथा धनियां का शीत निर्यास, प्रातः–सायं मधु के साथ पिलाया जाता है। अथवा पंचांग चूर्ण के साथ सोंठ, चिरायता मिला, क्वाथ सिद्ध कर मधु मिला सेवन कराते हैं।

बीज--कृमिघ्न, ज्वरहर, आमाशय विकृति नाशक है।

मूल--इसकी ताजी जड़ का स्वरस 5 तोला तक की मात्रा में देने से आंतों में ऐंठन सहित विरेचन होता है।

मात्रा–स्वरस 5 तोला तक, अधिक मात्रा में देने से वमन होता है।

चटरी = मटर। चतरोई = दारूहल्दी। चनसुर = हालों।

चना (Cicer Arietinum)

धान्यवर्ग एवं शिम्बीकुल के अपराजितादि–उपकुल (Papilionaceae) के इसके छोटे–2 सुन्दर वर्षायु क्षुप 1 फुट तक ऊंचे, अनेक शाखायुक्त, चिपचिपे, मृदुरोमश, तथा सघन होते हैं। पत्र–लगभग आधा इंच लम्बे, गोल, कंगूरेदार; पुष्प–पत्रकोण से निकले हुये, बारीक, गुलाबी रंग के श्वेताभ; फली–लगभग 1½ इंच लम्बी, अण्डाकार, नुकीली होती है। बीज या चना–प्रत्येक फली में 1 या 2 बीज, हरे पीले, श्वेत, भूरे या काले रंग के छिलकों से युक्त होते हैं।

यह द्विदलधान्यों में श्रेष्ठधान्य खेतों में प्रायः कार्तिक मास में बोया जाता है। जिस क्षेत्र में यह बार–बार बोया जाता है वहां की भूमि में क्षारांश की वृद्धि हो जाती है।

इसका क्षार द्रव और शुष्क दो रूपों में प्राप्त किया जाता है–द्रवक्षार–शीतकाल में इसके क्षुपों पर रात्रि समय झीनी स्वच्छ चादरों को डाल देते हैं। प्रातः सूर्योदय के पूर्व ही वस्त्रों को निचोड़–निचोड़ कर इस क्षार को शीशी में भर लेते हैं–इस चणकाम्ल (क्षार) में आक्जलिक (Oxalic), एसेटिक (Acetic), ओलीक (Oleic) तथा मलिक (Malic) आदि एसिडों का मिश्रण रहता है। इस क्षार में कोई भी बीज (खेतों में बोने योग्य) भिगोकर बोने पर वह शीघ्र ही उग आता है। औषध रूप में इस क्षार का विशेष उपयोग होता है।

शुष्क क्षार–इसके क्षुपों को सुखाकर कूट पीसकर 4 गुने जल में भिगो छानकर लोह–कढ़ाह में पकाकर श्वेतक्षार तैयार किया जाता है। इसका उपयोग उक्त द्रव क्षार के स्थान में किया जाता है। गुणधर्म व प्रयोग आगे देखिये।

ध्यान रहे उक्त शुष्क–क्षार में केवल क्षार पोटेशियम कार्बोनेट) ही रहता है, उसमें अम्लता नहीं रहती, अतः इसे चणकाम्ल नहीं कह सकते। आगे जो गुणधर्म हैं वे अम्ल के ही हैं।

नाम–

सं0–चणक, हरिंमन्थ, सकल प्रिय। हि0–चना, छोला, बूट, रहिला, रोहिला। म0–हरबरा, चणे। गु0–चण। बं0–छोला, बूट, कलाई। अं0–Gram (ग्राम), Chicken pea (चिकेन पी)। ले0–सायकर एरिटिनम।

रासायनिक संघटन–

बीज में प्र.श. 59 स्टार्च, 20 अल्बुमिनाइड (Albuminoids), 4 वसा, 1 तन्तु, 2 राख तथा फास्फोरिक एसिड 1 और जल 11 होता है।

श्वेत, बड़े दाने वाले काबुली चने में द्रवांश 10, 36, इथर एक्ट्रेक्ट (ether extract) 4.22, अल्बुमिनोइड 22.81 (इसमें नाइट्रोजन भी 3.65) कार्बोहाइड्रेट, 57.48, तंतु (Fibre) 1.39 तथा राख 3.20 प्रतिशत क्रमशः होता है।

पत्तों में मलिक एसिड विशेष होता है तथा द्रवांश 60.3, खनिज पदार्थ 3.5, प्रोटीन 8.2, वसा 0.5, कार्बोहाइड्रेट 27.2, कैलशियम 0.31, फास्फोरस 0.21 प्रतिशत क्रमशः एवं प्र. श. ग्राम 28.3 मिलिग्राम लोहा और विटामिन ए. 67.00 इ. यू. पाया जाता है।

बंगाल की ओर के चणक–पत्रों में द्रवांश अधिक होता है तथा उक्त शेष द्रव्यों की कुछ न्यूनता होती है।

चना (Cicer Arietinum Linn.)

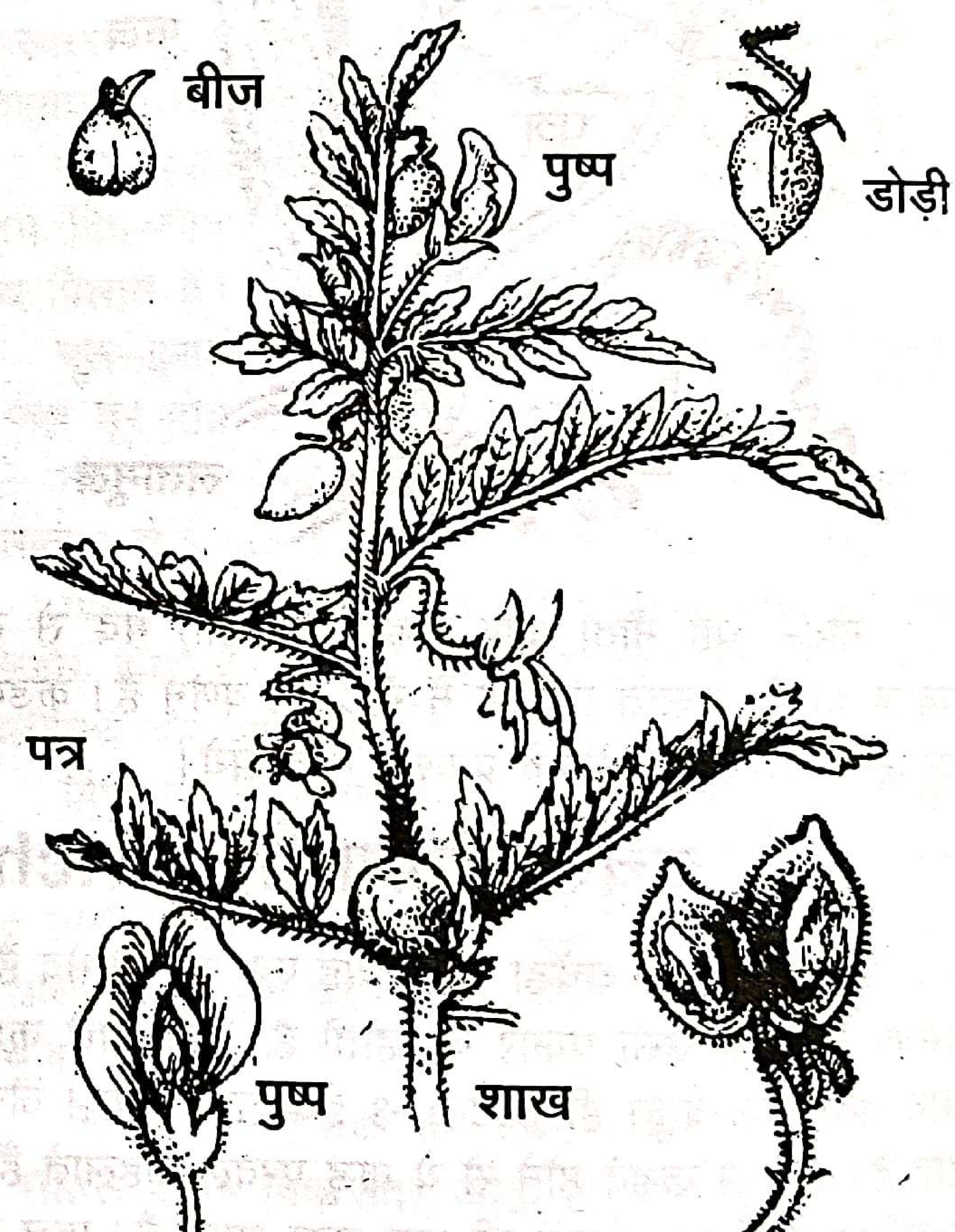

गुणधर्म, प्रयोग–

लघु (किन्तु इसका पिष्ट गुरु), रूक्ष, कसैला, विपाक में मधुर, शीत–वीर्य, वातकारक, विष्टम्भी तथा रक्तपित्त कफ, ज्वरादिनाशक है (केवल अंगारों पर भूने हुए या घृत में भूने हुए चने में ये गुण हैं[1]) पानी में भिगोये हुए या भिगोकर भूने हुए चने–बलवर्धक एवं रुचिकर होते हैं। भिगोये हुए चने–लघु, कसैले, ग्राही, शीतवीर्य, वातवर्धक, पित्तशामक, शुक्र को गाढ़ा करने वाले होते हैं।

---

1. घृत के साथ सेवन करने से चना अत्यन्त त्रिदोष शामक होता है। –सु0 सू0 अ0 46

साफ किये हुए चनों को रात्रि के समय चौगुने जल में मृत्पात्र, कांच पात्र या चीनी मिट्टी के पात्र में भिगो प्रातःकाल शारीरिक अग्निबलानुसार, जितनी मात्रा में सरलता से हजम हो जाय उतनी मात्रा में खूब चबाते हुए खाने से बल वीर्य की प्रचुर वृद्धि होती है। इसे खाने से पूर्व थोड़ी कसरत या व्यायाम कर लेना और भी उत्तम होता है। अधिक मात्रा में सेवन न करें अन्यथा क्षुधा मन्द होने की संभावना है। इसे 3 तोला से 5 तोला तक की मात्रा में ही नियमित रूप से प्रातः सेवन करना ठीक होता है। यदि और भी उत्तम गुणों की आवश्यकता हो तो–

रात्रि में भिगोए हुए चनों को प्रातः एक वस्त्र में बांध कर किसी आर्द्र स्थान पर रक्खें। दो दिन बाद इसमें जो अंकुर निकल आते हैं, उसमें विटामिन 'सी' की प्रचुरता रहती है। तथा ये अंकुरित चने उक्त चनों से अधिक गुणकारी होते हैं। जिन्हें प्रातः नास्ते में दूध पीने की आदत हो, वे उक्त भिगोये हुए या अंकुरित चनों पर दूध पी सकते हैं।

जिन्हें दोपहर में कुछ नास्ता करने की आदत हो, उन्हें भिगोकर भूने हुए चने 5 से 10 तोला तक अच्छी तरह चबाकर खाकर पानी पी लेना ठीक होता है। इनमें नमक आदि सौम्य मसाला भी मिलाया जा सकता है।

चणक रसायन–उक्त भिगोए हुए चने का प्रयोग शक्तिदाता रसायन के रूप में इस प्रकार किया जाता है–प्रथम मास में नित्य प्रातः उक्त भिगोए हुए चने (अंकुरित नहीं) केवल 5 तोला तक खावें। फिर अगले दो महीने में दोपहर के बाद भी 5 तोला तक लिया करें। चना खाने के पूर्व हलका सा व्यायाम कर लें तथा पश्चात् थोड़ा सा दूध भी पी लें। तीन मास के बाद केवल इन चनों पर ही रहें अन्य कोई भोजन न लें। दिन में 3–3 घंटे पर अंकुरित चने ले लिया करें। प्रत्येक बार उन्हें खूब चबाना न भूलें, इसके बाद दूध भी थोड़ा पी लिया करें। इस समय फल या फलों का रस भी लिया जा सकता है। ब्रह्मचर्य से रहना जरूरी है। छः महीनों के बाद ही शरीर वज्र के समान मजबूत हो जाता है। इस कल्प के प्रयोग में काबुली चने लेना और भी उत्तम होता है। यदि कभी भूख न लगे तथा पेट फूलने सा लगे तो हिंग्वष्टक चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए।

–श्री आचार्य नित्यानन्द जी (सचित्रायुर्वेद से साभार)

भिगोये हुए चने के जल में (चना निकाल लेने के बाद जो जल रह जाता है) मधु मिलाकर सेवन करने से नपुंसकता में लाभ होता है। इस मधु मिश्रित जल के सेवन से कास में भी लाभ होता है, स्वर–शुद्धि होती तथा मूत्र भी खूब खुलकर होता है। आगे विशिष्ट योग में चणक रसायन देखें।

देशी काले चने– शीतल, मधुर, रसायन, बल्य, कास, श्वास, पित्तातिसार, प्रमेह, कोष्ठबद्धता, मूत्रकृच्छ्र एवं पित्तप्रकोप नाशक हैं।

प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र नाशार्थ एवं रक्तशुद्धि के लिए सायंकाल में काले चने 200 नग उत्तम चुने हुए लेकर मृत्पात्र में 15 तोले जल में भिगो दें, उसमें त्रिफला चूर्ण भी 1½ तोला डाल दें। प्रातः शौच आदि से निवृत्त हो धीरे–धीरे 8–9 बजे तक 1–1 दाना करके चबा लें, जो पानी शेष रहे उसे फेंक दें और उसी में पुनः 200 चने उसी प्रकार त्रिफला के साथ भिगोकर 12 घंटे बाद चबावें। इस प्रकार 4–5 दिन इसके सेवन से लाभ होने लगेगा, तथा 40 दिन सेवन कर लेने से कब्ज, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र या किसी रोग के कारण वीर्य पतला पड़ गया हो, पेशाब के पूर्व श्वेत पदार्थ गिरता हो या पूयस्राव होता हो तो पूर्ण लाभ होगा। दस्त खुलासा होगा, भूख लगेगी, इन्द्रिय, गुदा एवं योनि के कई रोगों की निवृत्ति होगी, धातु पुष्ट होगी। विशेषतः पित्त प्रकृति वालों के रक्तविकार में यह अपूर्व लाभकारी है। (भा. ज. बू.)

विशिष्ट योगों में–चणक योग देखें।

श्वेत बड़े दाने वाले (काबुली)चने– गुरु, शीतवीर्य मधुर, अतिरुचिकर, वातकर, पित्तनाशक एवं बल वर्धक हैं।

पीले, भूरे तथा ताजे हरे या कच्चे चने– कसैले, किंचित् कटु, तृप्तिकर, वीर्योत्पादक तथा दाह, तृषा, अश्मरी व शोष नाशक हैं।

चने का हिम (जो चन्द्र की शीतल चांदनी में रखकर प्रस्तुत किया गया हो) प्रातः सेवनीय है। यह मधुर, पौष्टिक, पुष्टिकारक, तृप्तिकर, सौमनस्यजनन तथा सर्व रोग नाशक है।

चने का छिलका–यह छिलका आधा सेर एक घड़े में डाल पानी भर दें, घड़े की तलैठी में छेद कर सीकें लगा, तिपाई पर रख दें। नीचे पात्र में टपकने वाले जल को थोड़ा–थोड़ा पीते रहने से दाह व अतिसार में लाभ होता है। यह जल कामला के रोगी को भी लाभकारी है।

चने की कच्ची दाल– शुष्क, मलावरोधक एवं उदर में वातकर है।

धातुपुष्टि के लिए– इसकी दाल और शक्कर 1–1 तोला रात्रि में शयन करते समय 1 मास तक खाकर ऊपर जल न पीवें।

अर्धावभेद में चने की दाल को सेहुण्ड के दूध में भिगो शुष्क कर महीन पीस लें। इसकी नस्य से लाभ होता है। इसमें भूने हुए चनों का सेंक भी करना तात्कालिक लाभ देता है। –श्री ब्रह्मानन्द जी त्रिपाठी शास्त्री, वाराणसी

चने का झोल (यूष)–तथा सूप (पकाई हुई दाल या

दाल का पानी) रुचिकर, लघु, दीपक, पौष्टिक, वातवर्धक होने से दोषों में क्षोभकारक तथा कास, श्वास, प्रतिश्याय, वमन, थकावट आदि नाशक है।

चने का आटा या बेसन– स्वादिष्ट, लघु, मलावरोध नाशक, अधिक सेवन से वातकर है। बेसन की कढ़ी ताजी गरमागरम प्रतिश्याय, कफ प्रकोप, मलावरोध नाशक है। इसे गेहूं के आटे में मिलाकर अथवा गेहूं के साथ चना को एक साथ पिसवा कर बनाई हुई मिस्सी रोटी विशेष रुचिकर तथा विष्टब्ध–नाशक है, मल को साफ करती है। जिन्हें भोजन में पौष्टिक पदार्थ उपलब्ध नहीं होते उन्हें भोजन में उबले हुए चने या इसके बेसन का उपयोग करना हितकर है।

त्वचा की रूक्षता तथा खुजली पर–इसके आटे में थोड़ा पानी मिला शरीर पर उबटन जैसा मर्दन कर स्नान करने से त्वचा साफ होकर, खुजली दूर होती एवं पसीने की दुर्गन्ध मिटती है। यदि त्वचा में विशेष रूक्षता हो तो इसके आटे में थोड़ा दही मिलाकर मालिश करें।

नपुंसकता पर– इसके आटे का हलुवा बनाकर सेवन कराते हैं।

वात प्रधान श्वास रोग में भी यह हलुवा लाभकारी है, यह निजानुभूत है। किन्तु इसके सेवन काल में पकाया हुआ पानी पीना चाहिए। रोगी को यह हलुवा दूसरे तीसरे दिन भूख के अनुपात से चतुर्थांश ही देना चाहिए, शेष हलके सुपच पदार्थ उदर–पूर्ति के लिए दिये जा सकते हैं।

–श्री ब्रह्मानन्द जी त्रिपाठी शास्त्री
सी. के. 7/99 सिद्धेश्वरी वाराणसी

सुजाक पर– इसके मोटे आटे का हिम बार–बार पिलाने से मूत्र साफ होकर मूत्रमार्ग शुद्ध होता है।

सूखा भुना हुआ चना–अतिरूक्ष, उष्णवीर्य, रुचिकर, वात प्रकोपक, मलावरोध, तृषावर्धक, बल्य, कांतिप्रद तथा कफ, आम, शैत्य, स्वेद एवं थकावट को दूर करता है। त्वचारोग या रक्त–विकार की दशा में इसका अधिक सेवन हानिकर है, कुष्ठप्रकोपक है। किन्तु पानी में पकाया हुआ अलोना चना या चने की रोटी कुष्ठादि रक्तविकार नाशक है। लोक कहावत में कहा गया है कि–

"चना–चून को नून बिन, चौसठ दिन जो खाय। दाद, खाज अरु सेंहुआ, जरा मूर से जाय।।" अर्थात् चना के आटे की रोटी बिना नमक के 64 दिन तक खाने से दाद, खाज, सेंहुआ जड़ से चला जाता है। (कुष्ठ रोग, उपदंश, फिरंगादिक रक्तदोष में यह कल्प लाभदायक सिद्ध हुआ है (धन्वन्तरि–कल्प एवं पंचकर्म चिकित्सांक) ध्यान रहे इस कल्प के सेवन के पूर्व साधारण विरेचनादि से शरीर शुद्धि करा लेना विशेष आवश्यक लाभप्रद होता है। तभी यह कफ, पित्त एवं रक्तविकार नाशक होती है। इसके साथ थोड़ा घृत लेना भी आवश्यक है, अन्यथा यह रुखी गुरु, विष्टम्भकारी तथा नेत्रों को अहितकर होगी।

प्रतिश्याय पर– ताजे भुने चने रात्रि में सोते समय खाकर ऊपर से जल न पीवें। गर्म दूध पी सकते हैं। अथवा–

भुने हुए गरम चनों की पोटली बना गले को खूब सेकें, पश्चात् उन्हीं को खायें अन्य कुछ न लें, पानी भी न पीवें। यह उपचार दिन भर उपवास करने के बाद रात्रि में सोते समय करें। प्रातः प्रतिश्याय दूर हो जायेगा। कफ प्रकृति वालों को यह रामबाण है।

–श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री, वाराणसी

ज्वरावस्था के अतिस्वेद पर–भुने चनों को महीन पिसवा अजवायन और बच का चूर्ण मिला मालिश करते हैं।

बहुमूत्र विकार में भी भुने चनों का प्रयोग किया जाता है।

हृदय रोग पर–आयानी एस.एन. मेडिकल के डॉ. के. एस. माथुर ने जाहिर किया है कि रक्त में कोलेस्टेरोल के प्रमाण की वृद्धि से जो हृदय रोग होता है वह चना के खाने से दूर होता है तथा कोलेस्टेरोल का प्रमाण कम हो जाता है। बाजार में इसकी जो पेटेंट औषधियां मिलती हैं वे बहुत मंहगी होती हैं। अतः चना खाना हृदय रोग के लिये हितावह है। (सुश्रुत मासिक)

पत्र–इसके कोमल पत्रों का शाक या भुजिया अम्ल रुचिकारक, दुर्जर, कफवातकर, मलावरोधक, पित्तशामक ज्वरहर तथा दंतशोथ नाशक है। यह अश्मरी पर हितकारी नहीं है।

अतिसार पर–कोमल पत्र 10 तोला को गोघृत 1 तोला, हींग 1 रत्ती का छौंक देकर उसमें सेंधा नमक, छोटी पिप्पली 3–3 माशा, जायफल,कालीमिर्च व सोंठ 1–1 माशा तथा धनियां व कतरी हुई अद्रक 6–6 माशे ये मसाला डाल, थोड़ा पानी भी डाल कर शाक पका लें। तैयार हो जाने पर उसमें खट्टे अनार का रस 1 माशे डाल कर चावल के या चावल मूंग की खिचड़ी के साथ या ज्वार की रोटी से सेवन करें। –अनुभूत योगमाला से

हिक्का पर– पत्तों का चूर्ण चिलम में भर कर धूम्रपान करने से आमाशय–विकृति एवं शीतजन्य हिक्का में लाभ होता है। लू लगने पर एक कुल्हड़ में जल डालकर उसमें लगभग 10 तोला शुष्क पत्र सायं भिगोकर प्रातः छानकर जल पिलावें। पीसकर छाती पर लेप करें और आम के पना का सेवन करावें।

मोच तथा संधिभंग पर पत्रों को पानी में उबाल कर गरमागरम बफारा देकर पत्तों को बांधते हैं।

पंचांग– इसके ताजे क्षुप को कूट कर पानी में उबाल कर बफारा देने से ज्वर तथा मासिकधर्म विकृति में लाभ होता है।

क्षार चना– अम्ल, नमकीन, अति उष्ण वीर्य, दीपन, रुचिकर तथा अजीर्ण, उदरशूल, आध्मान, मलावरोध, पित्त ज्वर, प्लीहावृद्धि, अम्लपित्त, अतितृषा, कंठशोष, लू लगना, दाह आदि नाशक है।

मात्रा– द्रव क्षार 5–10 बूंद तथा शुष्क क्षार 2–8 रत्ती, जल के साथ 2–2 घंटे से 2–3 बार, उदरशूल, आध्मान, विबन्ध आदि उदरविकारों पर दिया जाता है। अजीर्णजन्य श्वासावरोध या श्वास के दौरे पर या कष्टार्त्तव पर भी यह उपयोगी है। अश्मरी व मधुमेह में इसका प्रयोग हानिकर होता है। प्लीहावृद्धि पर–क्षार 1 मा. में सेंधानमक और काचनमक 2–2 रत्ती मिला, 2½ तो. जल में घोलकर पिलाते हैं। दिन में 3 बार अथवा क्षार के साथ भुनी हींग, त्रिकटु, कुलिंजन, जवाखार व सेंधा नमक मिला सेवन कराते हैं।

हैजे में इसे लौंग व मिश्री के साथ पानी मिलाकर देते हैं। लू लगने पर इसे जल में मिला देते हैं। ज्वर में देने से तृषा, दाह संताप कम होता है। 'अजीर्ण में' सिरका के साथ इसे देते हैं।

शिरःशूल पर– क्षार में चने का आटा 20 तोला तथा राई चूर्ण 2½ तो. मिला जल में गाढ़ा लेप करने से वातजन्य सिर–पीड़ा दूर होती है। पीड़ा शमन होने पर लेप को धो डालना चाहिये।

व्रण–स्फोटनार्थ– किसी फोड़े को फोड़ने के लिये, तथा फूटे हुए व्रण के या विद्रधि के दूषित रक्त को दूर करने के लिये उस पर क्षार लगाते हैं।

नासिका शोथ पर–क्षार में 10 गुना पानी मिला कुछ बूंदें नाक में टपकाते हैं या फुरैरी से लगाते हैं।

बिच्छू दंश पर–क्षार का लेप करते हैं।

विशिष्ट योग–

(1) चनापाक–चने की दाल 1 सेर रात को दूध में भिगो, प्रातः सिल पर पीस तथा छोटे–2 बड़े बना घृत में तल लें। इन गरम–गरम बड़ों को हाथों से बारीक करते जावें। फिर इस चूर्ण को पुनः घृत में भूनें। जब लाल हो जाय तब इसमें खीरा बीजों का तथा अखरोट, चिरोंजी आदि के मगजों को अच्छी तरह मिला, सबके समभाग खांड़ को चाशनी में पाक जमा दें या मोदक बना लें। 5 तोला तक प्रातः सेवन कर ऊपर से दुग्धपान करने से पुंस्त्व शक्ति की विशेष वृद्धि होती है। शीघ्र पतन या स्खलन नहीं होने पाता।

मूंग की दाल का भी पाक (मुद्ग पाक) इसी प्रकार बना सकते हैं, जो स्त्रियों के लिये अधिक लाभदायक है। (वैद्य भूषण पं0 ठाकुरदत्त जी) अन्य चना पाक तथा अन्य पाकों को हमारे 'बृहद् पाक संग्रह' में देखिये।

(2) चणकासव–दाह, तृष्णादि नाशक–उत्तम नवीन चने 2 सेर तथा शुष्क पत्ते 2½ सेर लेकर किसी शुद्ध मटके में 13 सेर पानी में भिगोकर जहां रात्रि में ओस पड़ती हो, ऐसे खुले मैदान में रक्खें। प्रातः सब जल को अच्छी तरह छानकर, जल को उसी मटके में भर कर उसमें उत्तम मधु 5 सेर, धाय के फूल 13 छटांक, श्वेत जीरा तथा नागरमोथा चूर्ण 8–8 तोला मिला मुख सन्धान कर 15 दिन बाद छान बोतल में भर रक्खें।

1 से 5 तो. तक सेवन से दाह, तृषा, ग्रीष्म ऋतु का ताप, लू की बाधा दूर होती है। प्रमेह और सुजाक पर भी लाभकारी है। पेशाब खूब साफ लाता है।

(हमारे वृहदासवारिष्ट संग्रह से)।

(3) चणक रसायन–चने की दाल एक मुट्ठी (रोगी की मुट्ठी) भर कान्त लौह के पात्र में प्रतिदिन रात्रि को शुद्ध मीठे जल में (जल खारा न हो) भिगोकर प्रातः उसे खाकर उस पानी को भी पीलें। इस प्रकार 6 मास तक सेवन से अनेक प्रकार के पित्तज एवं कफज रोग तथा कुष्ठ व प्रमेह रोग नष्ट होते हैं। (भा. भै. र.)

(4) चणकयोग–असाध्य प्रमेह पर हल्दी, दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा, आमला समभाग लेकर पानी के साथ पीसकर एक कपड़े की पोटली में बांधकर उसे दोलायन्त्र विधि से जल से भरे हुए मृत्पात्र में लटका कर धूप में रख दें तथा रात्रि के समय उस ज़ल में 1 मुट्ठी चने भिगो दें। 24 घण्टे पश्चात् निकाल कर रोगी को खिलावें। इस प्रकार प्रतिदिन 1–1 मुट्ठी चने बढ़ाकर सेवन से असाध्य प्रमेह भी नष्ट हो जाता है। यह एक सिद्ध प्रयोग है। (भा. भै. र.)

(5) चने का दलिया– चनों को दरदरा पिसवा कर पानी में 4–6 घंटे भिगो दें। फिर पानी निकाल कर थोड़े घी में भून कर फिर पानी डालकर खूब पकावें। रुचि के अनुसार इसमें नमक या मीठा डालें। पानी सूख जाने पर इसे पतला करने के लिये मठा मिला दें। दलिया तैयार है। इस प्रकार प्रतिदिन बनाकर नियमित रूप से कुछ दिनों तक सेवन से जठराग्नि दीप्त हो जाती है। अग्निमांद्य दूर होता है। –श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री, वाराणसी

चनार–देखिये–चिनार।

चन्दन (Santalum Album)

कर्पूरादि वर्ग एवं अपने चन्दन (Santalaceae) का यह प्रसिद्ध वृक्ष सदा हरा भरा 20–30 फुट ऊंचा होता है। छाल बाहर से धूसर कृष्णाभ, लम्बे चीरों से युक्त एवं भीतर से रक्ताभ भंगुर; पत्र–विपरीत, नीमपत्र जैसे मुलायम, नुकीले 1–3 इंच लम्बे, निर्गन्ध; पुष्प– गुच्छों में जामुनी रंग के कुछ पीताभ, निर्गन्ध, फल–मांसल, गोल ½ इंच व्यास के, कृष्णाभ बेंगनी रंग के होते हैं। वर्षा से शीतकाल तक पुष्प तथा बाद में फल लगते हैं। इसके वृक्ष प्रायः 20 वर्ष के बाद ही पक्व दशा में आते हैं। प्रायः 40–60 वर्ष की आयु का यह वृक्ष उत्तम प्रकार से परिपक्व हो जाता है। तब ही इस के अन्दर के काष्ठ या सार–भाग में–उत्तम अति सुगन्ध आती है, जब वह कड़ा एवं तैल युक्त हो जाता है, तब ही काटा जाता है। जब से यह ज्ञात हुआ है कि इसकी ज़ड़ में अधिक तैल होता है, तब से इसे अच्छी तरह खोद कर जड़ मूल से बाहर निकाल कर अलग–अलग टुकड़े करते हैं। परिपक्व व अपरिपक्व चंदन के काष्ठ, वर्ण, तैल तथा सुगंध में भी पार्थक्य होता है।

(1) श्वेत और पीत चंदन– भावप्रकाश के कथनानुसार पीत चंदन को लोक में कलम्बक तथा संस्कृत में कालीयक, पीताभ, हरिचंदन आदि कहते हैं। गुणधर्म में यह रक्तचन्दन के समान ही होता है तथा विशेषतः व्यंग (मुख की झांई) को यह दूर करता है।

आधुनिकों के शोधानुसार इस पीत चंदन का कोई स्वतन्त्र वृक्ष नहीं पाया गया है। किन्तु भावप्रकाश तथा घन्वन्तरि निघंटु में उत्तम श्वेत चन्दन (जिसका वर्णन प्रस्तुत प्रसंग में किया जा रहा है) के विषय में लिखा है कि घिसने इत्यादि पर जो पीत वर्ण का हो वह उत्तम श्वेत चन्दन है[1]। तथा श्वेत उत्तम चन्दन भी मलय पर्वत का कहा गया है– "मलयोत्थम् पीत काष्ठम् चतुर्थ हरिचन्दनम्" ध0 नि0। अतः दोनों का एक ही उत्पत्ति स्थान तथा घिसने पर पीत वर्णता इन निदर्शनों से ज्ञात होता है कि उत्तम श्वेत चन्दन के ही बाह्य किंचित् श्वेत वर्ण के काष्ठ सार को श्वेत चन्दन और भीतर के पीतवर्ण के काष्ठ सार को पीत चन्दन मान लेने में कोई आपत्ति नहीं है।

अब रही गुणधर्म व प्रयोग की बात, सो चन्दन के प्रयोग के सम्बन्ध में अर्वाचीन शास्त्रोक्त कथन है कि– उक्ते चन्दन शब्दे तु गृह्यते रक्त चन्दनम्। चूर्ण स्नेहासवा लेहाः साध्या धवल चन्दनैः।। कषाय लेपयोः प्रायोयुज्यते रक्त चन्दनम्।। अर्थात् योग में सामान्य चन्दन शब्द से रक्त चन्दन का ग्रहण करें। चूर्ण, तैल, घृतादि, आसवारिष्ट एवं लेह में श्वेत चन्दन लेवें। अतः पीत चन्दन (श्वेत चन्दन के भीतर के काष्ठ सार) का प्रयोग भी रक्त चन्दन के जैसे हो सकता है। गुणधर्म में भी कोई विशेष भेद नहीं है। आगे रक्त चन्दन (चन्दन लाल) का प्रकरण देखिये।

(2) चरक के–दाह–प्रशमन, अंगमर्द प्रशमन, तृष्णा–निग्रहण, वर्ण्य, कण्डूघ्न एवं तिक्त स्कन्ध में; तथा सुश्रुत के सालशारादि, पटोलादि, सारिवादि, प्रियंग्वादि, गुडुच्यादि एवं पित्त–संशमन गणों में चन्दन लिया गया है।

सुश्रुत के सालसारादिगण में कुचन्दन व कालीयक का भी उल्लेख है। डल्हण ने सालसारादिगण एवं पटोलादिगण में कुचन्दन का अर्थ रक्त चन्दन किया है तथा कुचन्दन से ध0 नि0 के अनुसार पतंग भी लिया जाता है। यथा स्थान पतंग का प्रकरण देखिये।

इस प्रकार चन्दन शब्द से शास्त्रीय प्रयोगों में भिन्न–भिन्न अर्थों का ग्रहण करना विसंगत सा जान पड़ता है। चूर्णादि में चंदन से श्वेत चंदन तथा कषायादि में रक्त चन्दन ग्रहण करना चरकादि ऋषि–सम्मत नहीं ज्ञात होता। अतः जहां, जैसा, जिस रोग के लिये प्रयोग हो तहां वैसा ही रोगावस्था एवं देश कालानुसार बुद्धिपूर्वक विचार कर श्वेत या रक्त चन्दन ग्रहण करना ही ठीक जंचता है। रक्तपित्तादि रोगों में प्रायः रक्त चन्दन तथा कहीं–कहीं श्वेत चन्दन का भी प्रयोग किया जा सकता है। सुगन्ध के लिये तथा दाह प्रशमन एवं कृमि आदि नाशार्थ–श्वेत ही लेना चाहिये। यद्यपि रसादिकों में प्रायः सभी प्रकार के चन्दन समान ही होते हैं, उनमें विशेषता केवल गन्ध की ही रहती है, तथापि उनमें सर्व प्रथम मलयागिरी चन्दन ही गुणों में सर्वश्रेष्ठ होता है[2]।

(3) उत्तम श्रेष्ठ चन्दन के लक्षण– जो चन्दन स्वाद में तिक्त रसयुक्त, घिसने पर पीत वर्ण का, टुकड़े करने या काटने पर पीताभ लाल वर्ण का, ऊपर से देखने में श्वेत वर्ण का एवं गांठदार, कोटर (खोड़रा) युक्त तथा अति स्निग्ध, भारी व सुगंधयुक्त हो वह उत्तम श्रेष्ठ माना जाता है तथा इन लक्षणों से विपरीत हो तथा जिसमें सार भाग न हो और पांडुवर्ण का हो वह निकृष्ट है।

1. स्वादे तिक्तं कषे पीतं छेदे रक्तं तनौ सितम्।
ग्रन्थि कोटर संयुक्तं चन्दनं श्रेष्ठमुच्यते।। (भा0 प्र0)

2. चन्दनानि सु सर्वाणि सदृशानि रसादिभिः।
गन्धेन तु विशेषोऽस्ति पूर्वः (मलयजः) श्रेष्ठतमो गुणैः।। (भा0 प्र0)

(4) यह भारत की ही खास उपज है[1]। यह मैसूर, कुर्ग और मलाबार में अधिक होता है। वैसे तो कई स्थानों के बाग बगीचों में भी यह लगाया जाता है, किन्तु दक्षिण की पथरीली पहाड़ी भूमि में होने वाले इसके वृक्ष, अन्य उर्वरा भूमि में पैदा होने वाले वृक्षों की अपेक्षा उत्तम होते हैं। उनमें सुगंध तथा तैल की मात्रा अधिक होती है।

चन्दन (Santalum Album Linn.)

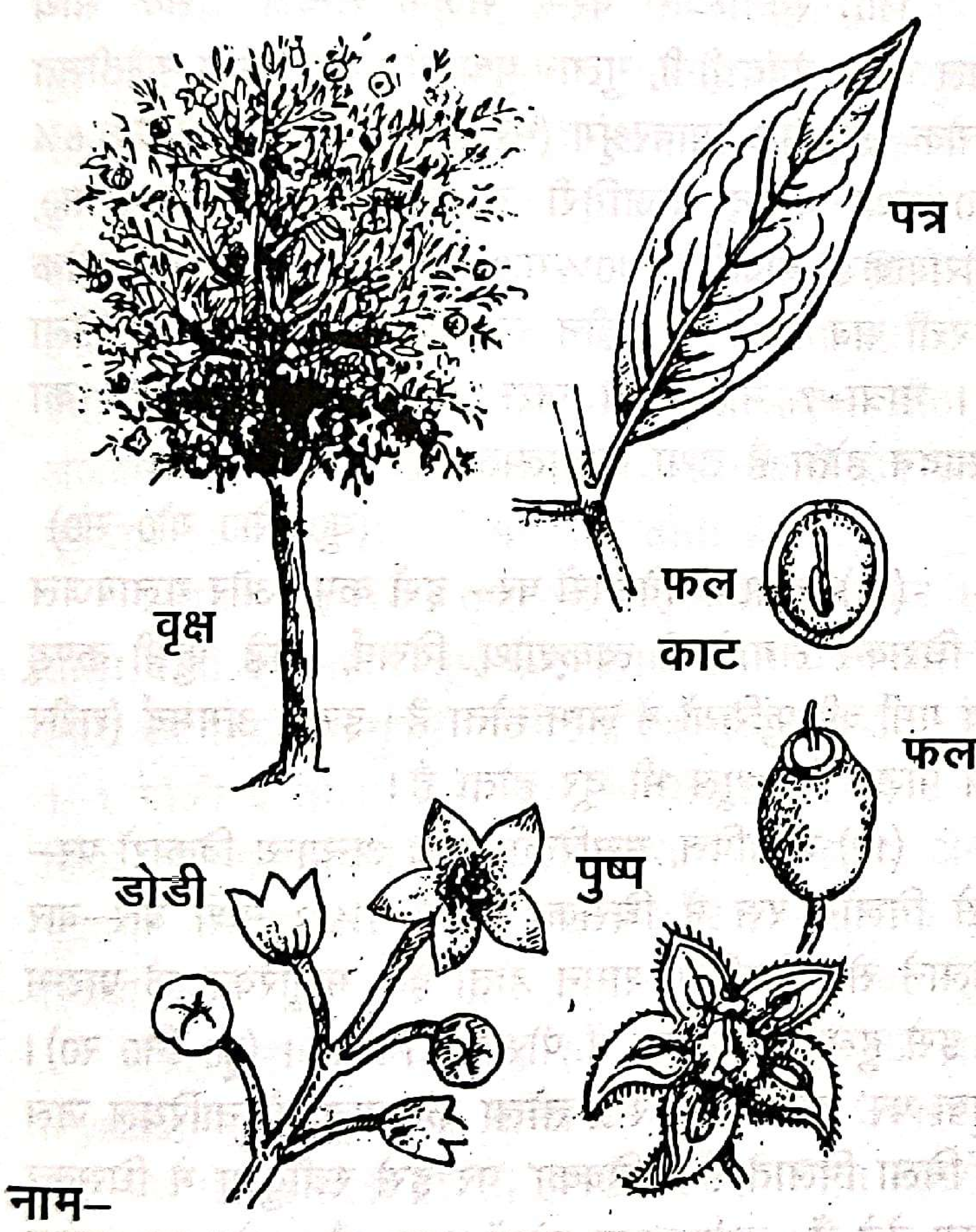

नाम–

सं0–चन्दन, श्रीखंड, भद्र श्री, गन्धसार, मलयज, चन्द्रद्युति इ0। हि0–चंदन सफेद। म0–चंदन। गु0–सुखड़। बं0–श्वेत चंदन। अं0–सेंडल बुड (Sandal Wood) ले0–सेन्टलम एल्बम।

1. यद्यपि अन्य देशों में कुछ ऐसे वृक्ष पाये गये हैं, जिन से भारतीय चंदन तैल जैसा तैल प्राप्त होता है, किन्तु वह उतना अच्छा नहीं होता। पूर्वी जावा से चंदन जैसे वृक्ष से निकाला हुआ एक तैल (Macassar sandal oil) आता है, किन्तु उसमें यहाँ के चंदन तैल जैसी सुगंध नहीं होती। एक (West Indian sandal oil) तैल अन्य वृक्ष (Fusanus Acuminatus) से, तथा एक तैल (East African sandal oil) किसी अन्य वृक्ष (Osyris Tenuifolia) से निकालते हैं। एक (West Australion sandal oil) तैल जो (Fusanus spicatus) वृक्ष से निकालते हैं, उसमें कुछ परिवर्तन कर भारतीय चंदन तैल जैसा बनाकर स्वल्प मूल्य में बेचा जाता है। –(नादकर्णी)

रासायनिक संघटन और तैल– काण्डसार और मूल में प्र0 श0 3–6 तक एक उड़नशील तैल होता है। काण्डसार की अपेक्षा मूल में तैल की मात्रा कुछ अधिक होती है।

इसके सार भाग के बुरादे को पानी में भिगोकर बड़े–बड़े भवका यंत्रों से परिस्रवण (Distilation) द्वारा यह तैल निकाला जाता है। प्रायः 1 मन चंदन की लकड़ी से 10 तो0 उत्तम तैल निकलता है, जो पीताभ या रंगहीन, कुछ गाढ़ा चिपचिका सा द्रव रूप में, तीक्ष्ण सुगंधित एवं स्वाद में कटु तिक्त होता है। इसमें सेंटलोल (Santalol) नामक सत्व 90 प्र0 श0 होता है। इसे शीशियों में खूब अच्छी तरह डाट बन्द कर, ठंडे प्रकाशहीन स्वच्छ स्थान में रक्खा जाता है। यह तैल पुराना होने पर भी सुगंधयुक्त रहता है, उसमें विकृति नहीं आती। बाजारू चन्दन तैल में देवदारु तैल तथा रेंडी तैल आदि की मिलावट की जाती है।

प्रयोज्य अंग– काण्डसार, तैल तथा छाल व बीज।

गुणधर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, तिक्त, मधुर, कटु विपाक एवं शीतवीर्य; कफपित्तशामक, ग्राही, सौमनस्यजनन, मेध्य, हृद्य, रक्त–शोधक, कफ निःसारक, श्लेष्म–पूतिहर, मूत्रल, स्वेदल, अंगमर्दप्रशमन, मूत्रमार्ग के लिये कोथ–प्रशमन, विषघ्न तथा आमाशय, आंत्र व यकृत् के लिये बल्य है। इसका प्रयोग तृषा, पाचन, दौर्बल्य, अतिसार, प्रवाहिका, कृमिरोग हृद्दौर्बल्य, रक्तविकार, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, मानसिक दौर्बल्य, श्वेतप्रदर, शुक्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह, बस्तिशोथ, चर्मरोग, ज्वर, दाह, अंगमर्द आदि पर किया जाता है। जीर्ण कास में इसके प्रयोग से कफ सरलता से निकलता एवं कफ में रक्त, पूय व दुर्गन्ध आना दूर होता है। इसका लेप–शामक, प्रदाह शमन, वर्ण्य तथा पैत्तिक शिरःशूल, विसर्प, दुर्गन्ध एवं त्वग्दोषहर होता है। पित्त ज्वर, तीव्र ज्वर एवं जीर्ण ज्वर में इसके प्रयोग से दाह, तृषा की शांति एवं स्वेद उत्पन्न होकर ज्वर में कमी होती तथा ज्वर के कारण हृदय पर होने वाला विषैला परिणाम नहीं होता।

(1) रक्तातिसार, दाह, प्रमेह आदि पर इसे चावल के धोवन में घिस कर मिश्री व मधु मिला पिलाते हैं; अथवा इसका चूर्ण 8 रत्ती, मिश्री या खांड और मधु में मिला, चावल के धोवन के अनुपान से सेवन कराते हैं। यह रक्तस्राव को भी दूर करता है। यदि इस प्रयोग को मूत्राघात, रक्तमेह एवं सुजाक में देना हो, तो उक्त मिश्रण में मधु नहीं मिलाते।

(2) वमन पर– चन्दन चूर्ण 4 मा0 तक, आमले के रस और शहद में मिलाकर पीने से वमन शांत होती है (वृ0 भा0) अथवा इसके साथ खस, सोंठ व अंडूसा-पत्र समभाग लेकर

कल्क करें, तथा मधु मिश्रित चावल–धोवन में मिला पिलावें (भै० र०)। योग रत्नाकर में इस योग में मृणाल (कमलनाल) भी समभाग मिलाया गया है।

(3) सुजाक (पूयप्रमेह) पर– उत्तम मलयागिरी चन्दन पानी में घिसकर 1 तो० कल्क निकाल 5 तो० शीतल जल में घोल दें, उसमें कलमी शोरा, जवाखार 2–2 माशे पीसकर मिला दें। फिर मिश्री या शक्कर 1 तोला मिला पिलावें। इस प्रकार दिन में 3–4 बार पिलाने से मूत्र साफ खुलकर होता है, दाह (चिनक) दूर होती एवं पूय आना बन्द होता है। कुछ दिन के सेवन से सुजाक दूर हो जाता है।

(4) लू लगने पर तथा घोर तृष्णा पर– चन्दन घिसा हुआ 2 तोला, शीतलचीनी 1 तो०, कलमी शोरा 6 मा०, शक्कर 10 तो० इनको आध सेर जल में पीस–छान कर शर्बत बना 4–5 बार में थोड़ा–थोड़ा पिलाने से लू लगने का कष्ट दूर होता है।

घोर तृष्णा पर– इसके महीन चूर्ण को नारियल के पानी में मिला कर पिलावें।

(5) प्रमेह पर– इसके साथ लाल चन्दन, मुलहठी, आंवला, गिलोय, खस और मुनक्का इनका क्वाथ सिद्ध कर उसमें भुनी फिटकरी 2–3 रत्ती मिलाकर सेवन से उपद्रवयुक्त प्रमेह, विशेषतः रक्तमेह, हारिद्रमेह व मांजिष्ठमेह समूल नष्ट होता है। (भै० र०)

(6) व्रणरोपणार्थ– चन्दनादि रोपण तैल– इसके साथ पद्माख, लोध, नीलोफर, फूल प्रियंगु, हल्दी और मुलहठी इनके कल्क 1 पाव में दूध 4 सेर तथा तिल तैल 1 सेर मिला तैल सिद्ध कर लें। व्रण पर लगाने से घाव भरने में उत्तम गुणकारी है। (सु० सं० चि० स्था० अ० 2)

(7) अपची (कंठमाला भेद) पर तैल– इसके साथ हरड़, लाख, बच और कुटकी 4–4 तो० ले इनका कल्क 1 पाव बना लें तथा इन्हीं द्रव्यों का क्वाथ 4 सेर और तिल तैल 1 सेर में मिला तैल सिद्ध करलें। इस तैल को मात्रा में पान करने से अपची समूल नष्ट होती है। (च० द०)

(8) पित्तज शिरःशूल–इसके साथ लाल चन्दन, कूठ, खस और केसर समभाग मिश्रित चूर्ण कर दूध और घृत में मिला लेप करें। लाभ होता है। (ग० नि०)

(9) नेत्र विकारों पर–1 भाग उत्तम चन्दन के बुरादे के साथ सेंधानमक 2 भाग, हर्र 3 भाग और ढाक का गोंद 4 भाग मिला महीन चूर्ण कर आंखों में लगाने से यह चन्दनादि चूर्ण शुक्र एवं अर्मादि नेत्र–विकारों को नष्ट करता है। (वं० स०)

सर्व प्रकार के तिमिर रोगों पर इसके साथ, त्रिफला, सुपारी और ढाक के गोंद को महीन पीस, थोड़े जल के साथ गोलियां बना आंखों में आंजने से यह चन्दनादिवर्ति शीघ्र तिमिर को नष्ट करती है। (भै० र०)

यदि नेत्र में सव्रण शुक्ल (फूली) हो तो इसके साथ गेरु, लाख और चमेली की कली समभाग लेकर जल से महीन पीसकर बत्तियां बना लें। इन्हें जल में घिसकर आंजने से लाभ होता है। इस योग को चन्दनाद्यंजन या चतुर्भद्रिकावर्ति कहते हैं। (बं० से०)

(10) रक्ताल्पता पर– 'सफूफ सन्दल' इसके साथ लाल चंदन, रेवंदचीनी, गुलाब पुष्प, गेहूं का सत व मुलैठीसत प्रत्येक 15¼ मा०, सावरश्रृंग (भस्म) व बबूल गोंद प्रत्येक 8¾ मा० तथा कद्दू बीजगिरी व कतीरा प्रत्येक 5¼ मा०, खीराककड़ी बीजगिरी 10½ मा०, कपूर और कहरुवा प्रत्येक 6 रत्ती सब द्रव्यों के महीन चूर्ण में समभाग शक्कर मिला लें। मात्रा–7 मा० ताजे जल से सेवन करें। रक्त का प्रसादन होता है तथा रक्ताल्पता में लाभ होता है। (यू० सि० यो० सं०)

(11) त्वचा के विकारों पर– इसे कपूर और गुलाबजल में घिसकर लगाने से त्वक्शोथ, विसर्प, फोड़े, फुंसी कण्डू एवं गर्मी की फुंसियों में लाभ होता है। इससे अंगमर्द (शरीर की पीड़ा) शिरःशूल भी दूर होता है।

(12) शीतपित्त, मसूरिका आदि अन्यान्य विकारों पर– इसे गिलोय रस में घिसकर मात्रा 1½-2 माशे बार–बार पिलाने से 'शीतपित्त' शमन होता है। 'मसूरिका' के प्रारम्भ में इसे हुलहुल के रस में पीसकर पिलावें। (बृ० नि० र०)। 'तृषा पर' इसे घिसकर 2 तोला की मात्रा में नारियल जल में मिला पिलाते हैं। 'हिक्का' पर इसे स्त्रीदुग्ध में घिसकर नस्य देते हैं। दुर्गन्धयुक्त दोनों प्रदर और प्रमेह पर इसका क्वाथ देते हैं। ग्रीष्म ऋतु में शीतल, आह्लादक पेय के रूप में इसका शर्बत सेवन करें। आगे विशिष्ट योगों में शर्बत चन्दन तथा ज्वर पर बस्ति प्रयोगार्थ चन्दनादि तैल देखिये।

चन्दन का तैल– उष्णवीर्य, वृक्कोत्तेजक, उत्तम मूत्रमार्ग शोधक, कृमिघ्न, त्वग्दोषहर, स्नेहन एवं कफनिःसारक हैं। नये या पुराने सुजाक के लिये यह परम लाभकारी है। सुजाक पर जो सलव्हर्सन (Salvarsan) नामक प्रसिद्ध जर्मन औषधि है वह इसी तैल के आधार पर निर्मित है ऐसा कहा जाता है। इस तैल के प्रयोग से वृक्क को कोई हानि नहीं पहुँचती है। इसका उत्सर्ग मूत्रजननेन्द्रिय संस्थान एवं फुफ्फुसों द्वारा होता है। उस समय इन अवयवों के स्रावों की वृद्धि एवं दूषित कृमियों का नाश होता है। इसका प्रयोग सुजाक, बस्तिशोथ, जीर्णकास, विषम ज्वर एवं पामा, खुजली आदि पर तथा सुगंधि के लिये विशेष रूप से किया जाता है। अधिक मात्रा में सेवन से गले में खुश्की, प्यास, शूलवत

वेदना एवं कटि प्रदेश में भारीपन मालूम होता है।

इलायची व वंशलोचन के साथ इसका सेवन उष्णवात (बस्तिशोथ), कास, जीर्णातिसार तथा मूत्राशय व वृक्क प्रदाह में किया जाता है। ब्रिटिश फार्माकोपिया में पहले इसके विशिष्ट प्रयोग पूयमेह (सुजाक) की उग्रावस्था एवं चिरकालिक अवस्था में बहुत किये जाते थे, किन्तु अब उतने नहीं किये जाते अब भी–

(13) नये अथवा पुराने सुजाक में–इसको 5 से 15 या 20 बूंदों तक दिन में 3 बार बताशों पर डाल कर या दूध के साथ लेने से बहुत लाभ होता है। यदि जलन अधिक हो तो इसे 5–10 बूंद की मात्रा में प्रत्येक घण्टे पर देते हैं। पूयस्राव के बन्द हो जाने पर भी लगभग 14–15 दिनों तक इसे देते रहने से रोग की पुनरावृत्ति नहीं होने पाती। यह प्रयोग इलायची व वंशलोचन के साथ अथवा सौंठ या अजवाइन के फांट के साथ विशेष लाभकारी है। इससे मूत्रदाह एवं बस्तिशोथ में भी लाभ होता है।

अथवा–वंशलोचन तथा छोटी इलायची के बीज 1–1 तोला दोनों का महीन चूर्ण कर उसमें उत्तम चंदन का तैल मिला कर छोटी–2 सुपारी जैसी गोलियां बना लें। प्रातः–सायं 1–1 गोली 4 तोला शीत जल में घोलकर उसमें 6 मा0 मिश्री चूर्ण मिला पिला दें। इससे शीघ्र ही 6 पहर के अन्दर पूयप्रमेह की जलन शांत होती तथा 7 दिन में सुजाक तथा स्त्रियों के प्रदर पर भी लाभ होता है। (ब0 गु0)

(14) जीर्ण बस्तिशोथ (Cystitis), गवीनीमुख शोथ (Pyelitis), मूत्रकृच्छ्र तथा बस्ति के राजयक्ष्मा–उपसर्ग से बार–बार पेशाब होता हो, तो इसके तैल की मात्रा बताशे में डालकर दूध के साथ सेवन कराते हैं।

(15) जीर्ण कास में– दुर्गन्धयुक्त कफ निकलता हो, तो इसकी 2–4 बूदें बताशे पर डाल सेवन कराते हैं।

(16) नाक की फुन्सियों पर– इसके तैल में दुगना सरसों तैल मिला फुरहरी से लगाते हैं। खुजली, पामा आदि पर इसे नींबू के रस में मिलाकर लगाते हैं। वैसे ही कर्णशूल, दन्तशूल एवं शोथ आदि अनेक चर्मरोगों पर भी इसका स्थानिक उपयोग किया जाता है।

बीज–चन्दन के बीज उष्ण हैं। गर्भपात या गर्भस्राव के लिये पिचुवर्ति के रूप में योनिमार्ग में इनको धारण कराते हैं।

छाल–वृक्ष की छाल को पीस कर विसर्प, खुजली आदि त्वग्रोगों पर लेप करते हैं।

विशिष्ट योग–

चन्दनादि अर्क (हिस्टीरिया पर)– इसका उत्तम बुरादा, मुनक्का बीज रहित, गाजर लाल रंग की (इसके अन्दर के श्वेत भाग को निकाल दें), लाल कमल, लाख (पलास की या नीम की), ब्राह्मी (नई सूखी), शंखपुष्पी, ब्रह्मदंडी, जटामांसी और जवाखार 20–20 तो0 लेकर चूर्ण कर 30 सेर जल में शुद्ध मटके में भरकर 24 घण्टे बाद भवके से अर्क खींच लें। अर्क खींचते समय कस्तूरी 1½ मा0 और केसर 3 मा0 इन दोनों को नाल के मुंह पर बांध देना चाहिये, जिसमें वाष्पजल टपकते समय इन दोनों द्रव्यों से युक्त हो पात्र में टपके। फिर शीशी में भरकर रख दें।

मात्रा–1 से 5 तो0 तक प्रातः–सायं देवें। इससे योषापस्मार (हिस्टीरिया) अवश्य दूर होता है। पथ्य में दूध भात देवें तथा स्नान टब के जल में बैठकर करें।

(धन्वन्तरि प्रयोगांक से)

नोट– शुक्रमेह, पूयप्रमेह एवं पौष्टिक चन्दनासव के प्रयोग हमारे वृहदासवारिष्ट संग्रह में देखें। अथवा अन्य ग्रन्थों में देखें।

(2) चन्दनपाक या खमीरा सन्दल (पित्तविकार नाशक)– चन्दन चूर्ण 10 तोले थोड़े गुलाबजल के साथ सिल पर अच्छी तरह पीसकर उसमें आध सेर गुलाबजल मिला 24 घन्टे तक ढांक रक्खें। फिर मन्द आंच पर पकावें। आधा जल शेष रहने पर छान कर उसमें 60 तो0 मिश्री मिला, पक्की चाशनी होने पर पाक जमा दें, अथवा गुलकन्द जैसा खमीरा हो जाय तो उतार कर शीशी में भर रक्खें।

मात्रा– 1 तो0 से 2 तो0 तक प्रातः–सायं सेवन कर, ऊपर से दूध पीवें। इससे मूत्र साफ होता एवं पित्तविकार शांत होकर मस्तिष्क को परम शांति प्राप्त होती है। शरीर में किसी प्रकार का दाह, उष्णता नहीं रहने पाती, तृषा व घबराहट शीघ्र दूर होती है। सुजाक ग्रस्त रोगी के लिये विशेष लाभदायक है।

यदि उक्त प्रयोग खमीरा जैसा बन जाय तो मात्रा 7 मा0 से 1 तो0 तक अर्क गावजवां 12 तो0 के साथ सेवन करने से हृदय की धड़कन, हृदय का डूबना, हृदय की कमजोरी पर यह विशेष लाभकारी होता है।

नोट–पाक के अन्य उत्तमोत्तम प्रयोग 'वृहत्पाक संग्रह' में देखिये।

(3) शर्बत–चन्दन–श्वेत चन्दन चूरा 10 तो0 को 1 सेर अर्क गुलाब में भिगोकर 12 घंटे बाद पकावें, तिहाई भाग रहने पर छान कर 1 सेर खांड मिला कर शर्बत की चाशनी तैयार करलें। मात्रा 2 तोला। खफकान, यकृत् तथा आमाशय के विकृत पित्त को नष्ट करता है। इसकी 2 तोले की मात्रा, अर्क गावजवां 12 तो0 के साथ सेवन से यह हृदयोल्लासकारी, हृदय को बल देने वाला तथा उष्ण शिरःशूल में परीक्षित है। (यू0चि0सा0 तथा यू0सि0सं0)

(4) चन्दनावलेह– (ग0 नि0)– श्वेत चन्दन, वंशलोचन, धनियां, सारिवा, कंकोल, खस, केसर, सतावर का चूर्ण तथा गिलोय सत 1–1 तो0 एकत्र खूब खरल कर रक्खें। फिर बिजौरा नींबू रस 1 सेर तथा अनार रस, नारियल का पानी (हरे नारियल को तोड़ने से जो पानी निकलता है) तथा मिश्री आधा–आधा सेर लेकर एकत्र पकावें, जब अवलेह जैसा गाढ़ा हो जाय तब ठण्डा होने पर उसमें उक्त चूर्णों के मिश्रण को अच्छी तरह मिलाकर सुरक्षित रक्खें।

मात्रा– 1 से 1½ तो0 सेवन से हृद्रोग, भ्रम, मूर्च्छा, वमन और भयंकर दाह का अवश्य नाश होता है।

(भा0 भै0 र0)

नोट– वंध्या स्त्री, बालक एवं विशेषतः वृद्धों के लिये हितकर 'चन्दनाद्यवलेह' का पाठ हारीत संहिता में देखिये।

(5) चन्दनादि घृत–श्वेत चंदन, चित्रक, कटेरी, इन्द्रजौ, नागरमोथा, सोंठ, कुटकी, त्रायमाण (इसके अभाव में बनफशा लें), आमला, खस तथा दोनों प्रकार की सारिवा 2–2 तो0 लेकर एकत्र थोड़े जल में पीस कल्क कर लें। फिर घृत 2½ सेर, दूध 4 सेर और जल 5 सेर एकत्र कर उक्त कल्क के साथ, घृत सिद्ध कर लें। यथोचित मात्रा एवं अनुपान के साथ सेवन से विषम ज्वर (चौथिया, तिजारी आदि), उन्माद, कास, श्वास तथा सर्व प्रकार के अपस्मार नष्ट होते हैं।

(बं0 से0)

नोट–पित्तज ग्रहणी रोग पर चन्दनादि घृत का पाठ भी बंगसेन में देखिये।

(6) चन्दनादि तैल (ज्वर पर बस्ति–प्रयोगार्थ)–श्वेत चन्दन, कमल, गम्भारी फल, मुलहठी और अगर 4–4 तोले का कल्क कर तिल तैल 1 सेर तथा जल 4 सेर मिला तैल सिद्ध कर लें। इस तैल की बस्ति लेने से सर्व प्रकार के ज्वर दूर होते हैं।

(बं0 से0)

नोट–चन्दनादि तैल, महाचन्दनादि तैल, चन्दनबला लाक्षादि तैल के विस्तृत प्रयोग भावप्रकाश, योगरत्नाकर, भैषज्यरत्नावली आदि ग्रन्थों में देखिये।

चन्दन लाल (Pterocarpus Santalinus)

कर्पूरादि वर्ग एवं शिम्बीकुल के अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) का यह वृक्ष, सिरस के वृक्ष जैसा 15–30 फुट ऊँचा बड़ा होता है। छाल कृष्णाभ धूसर वर्ण की; पत्र–संयुक्त, 1½-3 इंच लम्बे, अण्डाकार, अग्रभाग में कुछ गोल, प्रत्येक सींक पर प्रायः 3–3 होते हैं। पत्रक–आगे की ओर गोलाकार तिल पत्र जैसे; पुष्पदण्ड–कुछ लम्बा, जिसके चारों ओर अल्प पीताभ श्वेत वर्ण के पुष्प होते हैं। फली–2–3 इंच लम्बी, टेढ़ी सी, वृन्त की ओर कम चौड़ी एवं वृन्त बहुत छोटा होता है। बीज–फली में गुंजा जैसे लाल रंग के बीज होते हैं। ग्रीष्म ऋतु में पुष्प और फली लगती हैं।

काष्ठ–बाहर की ओर श्वेत वर्ण का तथा भीतरी काण्डसार कृष्णाभ लाल रंग का होता है। औषधि कर्म आदि में यही प्रयुक्त होता है। यह अति कड़ा, वजन में भारी, रेशेदार, स्वाद में कसैला तथा निर्गन्ध होता है, उत्ताप देने से इसमें हलकी सुगन्ध आती है। इसका बुरादा भी बाजार में बिकता है। ब्रिटिश फार्मेसी में इसका उपयोग लवेंडर के कम्पौण्ड टिंचर्स में रंग देने के लिये प्रायः किया जाता है।

इसके वृक्ष दक्षिण भारत के जंगलों में, विशेषतः लमावार प्रदेश में अधिक पाये जाते हैं।

(1) सुश्रुत के पटोलादि, सारिवादि, प्रियंग्वादिगणों में इसकी गणना की गई है।

(2) इसके बीज प्रायः लाल, घुमची (गुंजा) जैसे होने से शायद किसी–किसी ने इसे बड़ी घुमची मान लिया है तथा इसे कोई–कोई कुचन्दन कहते हैं। किन्तु बड़ी घुमची (रंजन) इससे भिन्न है। यथा स्थान रंजन (बड़ी घुमची) का प्रकरण देखें।

चन्दन रक्त (Pterocarpus Santalinus Linn)

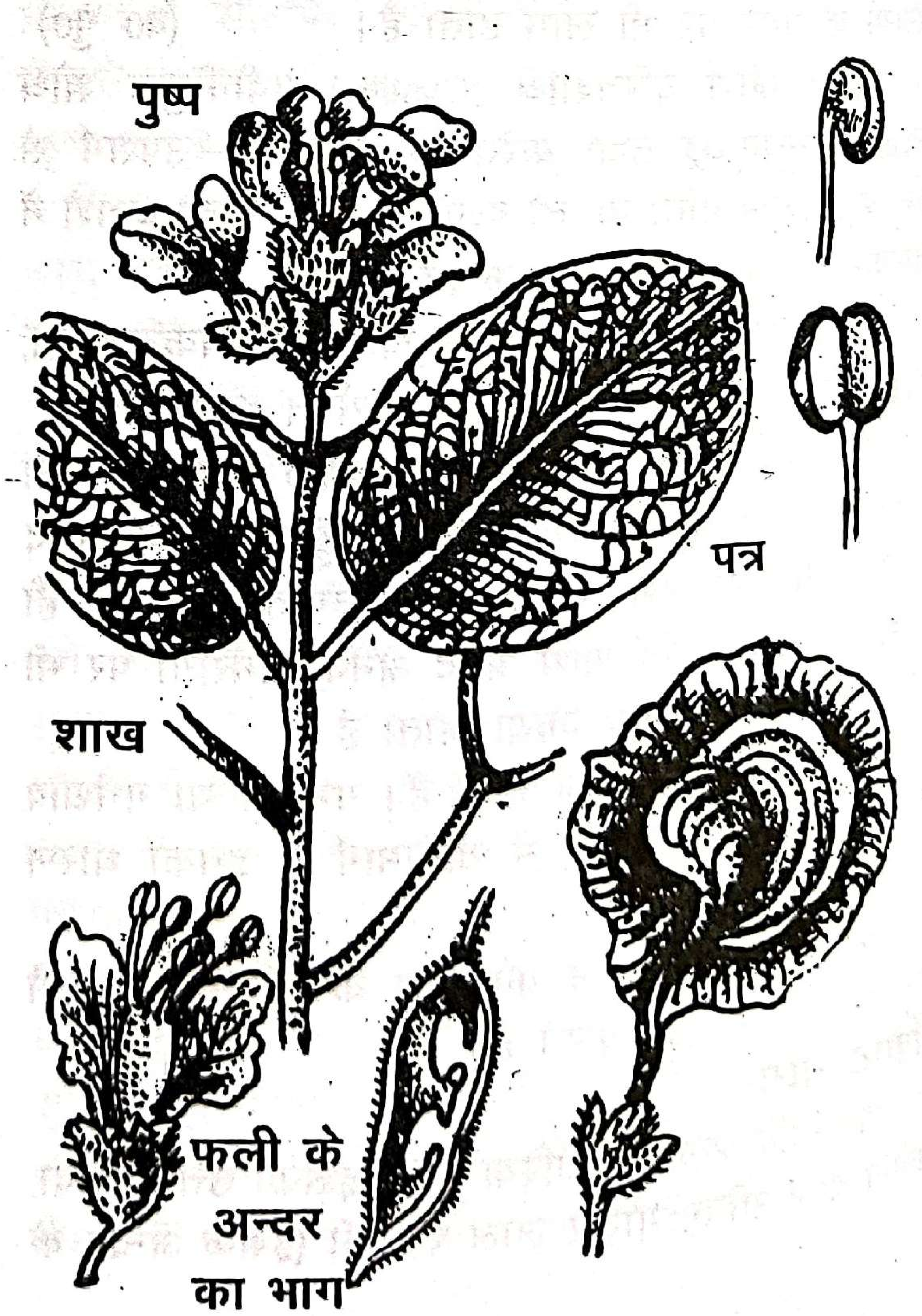

कई रक्त चंदन से पतंग ग्रहण करते हैं। यद्यपि पतंग और रक्त चंदन के वृक्षों में बहुत कुछ साम्य है, तथा रक्त चंदन के स्थान में पतंग की लकड़ी औषधि कर्म में लेते भी हैं तथापि पतंग इससे भिन्न ही हैं। यथा स्थान पतंग का प्रकरण देखिये।

नाम–

सं0–रक्त चन्दन, तिलपर्णी, रक्तसार, प्रवालफल, क्षुद्रचन्दन इ0। हि0–लाल चंदन, रक्त चंदन। म0–रक्त चंदन, राता निलि। गु0–रक्तफली, लाल चंदन। बं0–रक्त चंदन। अं0–रेड सेन्डल वुड (Red sendal wood), रेड सेन्डर्स (Red sanders), ले0–टेरोकार्पस सेंटालिनस।

रासायनिक संघटन– इसमें एक स्फटिकाभ लाल रंग का तत्व सेंटालिन (Santalin), सेंटालिक एसिड (Santalic acid), सेंटल टेरो कार्पिन (Santal pterocarpin) नामक एक अविलेय श्वेत स्फटिकाभ पदार्थ, होमोटेरोकार्पिन (Homopterocarpin), ग्लुकोसाईड, तथा रंजक द्रव्य होते हैं।

प्रयोज्य अंग–काण्डसार।

गुणधर्म व प्रयोग–

गुरु, रूक्ष, तिक्त, मधुर, विपाक में कटु, शीतवीर्य, कफपित्त शामक, (अधिकांश में कफकर), स्तम्भन, रक्त–शोधक, दाह–प्रशमन, नेत्रहितकर, वीर्यवर्धक तथा वमन, तृषा, अतिसार, रक्तार्श, रक्तविकार, कुष्ठ संग्रहणी, दाह, ज्वर आदि में प्रयोजित है।

दाह, क्षत, शोथ, शिरःशूल, चर्मरोग एवं नेत्र–विकारों में इसका शीतल लेप किया जाता है। यह लेप व्रणरोपण भी होता है। नेत्र–पलकों की सूजन पर इसके लेप से लाभ होता है। ग्राही होने से अन्य औषधियों के साथ इसका क्वाथ अतिसार, संग्रहणी आदि में देते हैं।

(1) रक्तपित्त पर– इसका चूर्ण और कमल–पुष्प दोनों के शीत कषाय में मिट्टी का ढेला खूब तपा कर बुझावें। ठंडा होने पर उसमें मिश्री व शहद मिला पिलावें। (वा0 भ0) अथवा–

इसका चूर्ण, खस और लोध्र के क्वाथ से सिद्ध पेया का पान रोगी को करावें। (बं0 से0)

अथवा– इसके साथ खस, नागरमोथा, धान की खील, मूंग, पीपल और इन्द्र जौ समभाग मिश्रित 2 तो0 जौकुट कर रात्रि के समय खिरेंटी के क्वाथ में भिगो प्रातःकाल छानकर पिलाने से रक्तपित्त अवश्य नष्ट होता है। (वा0 भ0 चि0 अ0 2)

यदि कफयुक्त रक्तपित्त हो तो इसके साथ इन्द्र जौ, पाठा, कुटकी, धमासा, गिलोय, खस और लोध समभाग मिला जौकुट कर क्वाथ सिद्ध कर उसमें पीपल चूर्ण और मधु मिला पीने से लाभ होता है। इससे तृष्णा, कास और ज्वर में भी लाभ होता है। (वं0 से0)

(2) ज्वर पर– लाल चंदन, धनियां, मोथा, गिलोय और सोंठ का क्वाथ सेवन करें। (ग0 नि0)

पित्तज ज्वर हो तो– लाल चन्दन, खस, गम्भारी फल, फालसे की छाल तथा महुवे की छाल (या फल) के क्वाथ में थोड़ी शक्कर मिला पिलावें। (बं0 से0)

शीतला (चेचक) ज्वर की शांति के लिये–लाल चन्दन, अडूसा, मोथा, गिलोय और मुनक्का का शीतकषाय पिलावें। (भा0 प्र0)

गर्भिणी के ज्वर में–लाल चन्दन, सारिवा, लोध, और मुनक्का के क्वाथ में खांड मिला पिलावें। (यो0 र0)

मंथर ज्वर (मोतीझरा)–लाल चन्दन, खस, धनियां, पित्त-पापड़ा, नागरमोथा और सोंठ का क्वाथ पिलावें। (यो0 र0)

विषम ज्वर पर (चन्दनादि लोह)– इसका चूर्ण तथा पाठा, पीपल, हर्र, सोंठ, नीलोफर, आमला, मोथा, चित्रक और बायविडंग सबका अलग–अलग चूर्ण 1–1 भाग, खस 2 भाग तथा उत्तम लोह भस्म सबके बराबर लेकर एकत्र खरल करें।

मात्रा– 2 रत्ती, मधु के साथ सेवन करावें।

इसकी मात्रा–2 से 4 रत्ती तक मधु से चाटकर ऊपर से मोथा को चबाना चाहिये। अन्येद्युष्क आदि जीर्ण विषम ज्वर में जब प्रतिदिन दोपहर या सायं ज्वर 99 से 100 तक रहता हो, हाथ पैर में दाह हो, मूत्र लाल या हल्दी का सा जलन के साथ आता हो, देह पांडुवर्ण हो तब इसे देवें। यह रस पित्त, वातपित्त या वातकफ की प्रबलता में दिया जाता है। मन्द ज्वर में इसे मधु और गिलोय के रस से दे सकते हैं। (भै0 र0)

(3) प्रमेह पर– (चन्दनादि चूर्ण) इसके चूर्ण के साथ बबूल गोंद, फल प्रियंगु, जामुन की गुठली, आम की गुठली, इन्द्र जौ, अजवांयन, अजमोद, मोचरस, गिलोय और लोह भस्म समभाग लेकर महीन चूर्ण खूब एकत्र खरल कर लें। 4 से 8 रत्ती तक की मात्रा में सेवन से पूय एवं रक्तयुक्त प्रमेह, लसीका प्रमेह तथा अन्य समस्त प्रकार के उपद्रवयुक्त प्रमेहों में और अग्निमांद्य, तृष्णा, ज्वर और अरुचि में भी लाभ होता है। (भा0 भै0 र0)

(4) विस्फोटक के दाह पर–इसके साथ नागकेसर, चौलाई की जड़, सारिवा, सिरस की छाल और सिरस के पत्र (या चमेली पत्र) पीसकर लेप करने से दाह शांत होता है। (भा0 प्र0)

(5) पित्तज अण्डवृद्धि पर–इसके साथ मुलहठी, कमल पुष्प, खस और नीलोफर को दूध में पीसकर लेप करें। (वृ0 मा0)

(6) नेत्रविकारों पर–इसके साथ मुलहठी, लोध, चमेली–पत्र और गेरू समभाग लेकर (पानी या इमली के रस में) पीसकर आंखों के पेवटों पर लेप करने से दाह तोद (सुई चुभने की सी पीड़ा) तथा अभिष्यन्द (आंखें आ जाना) में लाभ होता है। (बं0 से0) अथवा–

इसके साथ पीपल, हल्दी और कटकरंज के बीजों के समभाग चूर्ण को वर्षा–जल (भूमि से ऊपर ही स्वच्छतापूर्वक ग्रहण किये हुए जल) में पीसकर बत्तियां बना लें। इसे नेत्रों में आंजने से नेत्रों के भयंकर रोगों में भी लाभ होता है। (भा0 भै0 र0)

(7) शोथ पर–इसके साथ मुलहठी, खस, नागकेसर, तिल, मेढ़ासिंगी, मजीठ, आक की जड़ की छाल और पुनर्नवामूल समभाग लेकर पानी में पीस लेप करें। गर्भिणी की सूजन में भी लाभ होता है। (यो0 र0)

(8) व्यंग या चेहरे की झांई पर– इसके साथ मजीठ, कूठ, लोध, फूलप्रियंगु, बड़ के अंकुर और मसूर को पानी में पीसकर लेप करें। इससे मुख की कांति भी बढ़ती है।

(9) अन्यान्य विकारों पर–रक्तार्श पर– इसे दूध में घिसकर पिलाते, तथा जल में घिसकर लेप करते हैं। हिक्का पर–इसे स्त्री–दुग्ध में घिसकर किंचित् गरम कर उसमें सेंधा नमक मिला, खासकर बालकों की हिक्का में पिलाते तथा बड़ों को इसकी नस्य देते हैं। शरीर पर उठने वाले फफोलों पर–इसके साथ मजीठ व नीमपत्र को दूध में या शीत जल में पीसकर लेप करते हैं। दाह पर–इसे 7 माशे तक चावल के धोवन में पीस कर मिश्री मिला पिलावें। बालकों के उदर में रक्तग्रन्थि हो तो इसके साथ समुद्रफल को जल में पीसकर पिलावें। अग्निदग्ध व्रण पर–इसके साथ, वंशलोचन, गेरू और गिलोय को खूब महीन पीस घृत मिला लेप करते हैं। तारुण्य पिटिका (मुंहासों) पर–इसके साथ हल्दी को भैंस के दूध में पीस कर लेप करते हैं।

चन्दरस देखिये कहरुवा। चन्दलोई शाक–देखिये माठ (लाल साग)। चन्द्रजीत–देखिये दन्ती बड़ी।
चन्द्रजीत लाल देखिये–दन्ती बड़ी। चन्द्रमूला–देखिये बच (सुगन्ध)। चपरी–देखिये खेसारी।

चमेली (Jasminum Grandiflorum)

पुष्पवर्ग एवं पारिजात–कुल (Oleaceae) की इसकी खूब फैलने वाली लता होती है। इसका काण्ड मोटा नहीं होता, किन्तु पतली–पतली शाखाएं बहुत लम्बी बढ़ जाती हैं। इन्हें यदि सहारा न मिले तो ये भूमि पर ही खूब फैल जाती हैं। ये शाखाएं कड़ी एवं धारीदार; पत्र–अभिमुख, संयुक्त, 2–5 इंच लम्बे, नौंकदार, छोटे–छोटे गोल, अग्रभाग का पत्र कुछ अधिक लंबा; पुष्प–वर्षाकाल में, पत्रकोण से, या शाखा के अन्त में मंजरी में, बाहर से गुलाबी आभायुक्त श्वेत वर्ण के, 5 पंखुड़ीयुक्त 1–1½ इंच व्यास के, ½-1 इंच लम्बे होते हैं। यह भारत में प्रायः सर्वत्र ही बागों में पुष्पों के लिये बोया जाता है। पुष्प दीखने में तो सुन्दर नहीं होते, किन्तु सुगन्ध अति मनोहर एवं दूर तक फैलने वाली होती है।

नोट–श्वेत और पीत पुष्प भेद से इसके दो प्रकार हैं–यहाँ श्वेतपुष्प वाली चमेली का वर्णन किया जा रहा है। पीत पुष्प या पीताभ श्वेत पुष्प वाली को पीली चमेली (स्वर्ण जाति) कहते हैं। इन दोनों के गुणधर्म में कोई विशेष भेद नहीं है। पीताम श्वेतपुष्प वाली को कहीं–कहीं जुही भी कहते हैं। चमेली, जुही और मालती इन तीनों में बहुत घोटाला हो गया है। इन तीनों के गुण धर्म प्रायः एक समान ही हैं। किन्तु जुही जो उक्त पीताभ पुष्प वाली चमेली से भिन्न है, उसके पुष्प चमेली से छोटे होते हैं। यथा स्थान 'जुही' का प्रकरण देखिये। मालती के पत्र कुछ लम्बे, फूल बहुत ही बारीक तथा कुछ टेढ़े से होते हैं, यह प्रायः ग्रीष्म ऋतु में सुपुष्पित होती हैं। यथा स्थान 'मालती' का प्रकरण देखिये।

चरक के कुष्ठघ्न गण में इसका उल्लेख है जंगली चमेली का वर्णन चुरहर प्रकरण में देखिये।

नाम–

सं0–जाति, सौमनस्यायनी (मन को प्रसन्न करने वाली), चेतिका, हृद्यगंधा, मालती (भावप्रकाश में मालती और चमेली को एक ही माना है) इ0। हि0–चमेली। म0–चमेली, जाई। गु0–चंबेली। बं0–चामेली, जाति, जुई। अं0–स्पेनिस जेस्मीन (Spanis jasmine)। ले0–जेस्मिन ग्रेंडी फ्लोरम।

रासायनिक संघटन– इसके पत्रों में राल, वेतसाम्ल (Salicylic acid), जेस्मिनीन (Jusminine) नामक क्षार तत्व तथा कुछ कषाय द्रव्य होते हैं।

प्रयोज्य अंग–पत्र, पुष्प और मूल।

गुणधर्म व प्रयोग–

श्वेत और पीत दोनों चमेली लघु, स्निग्ध, मृदु, तिक्त कषाय, विपाक में कटु एवं उष्ण वीर्य है। ये त्रिदोषशामक, अनुलोमन, रक्तप्रसादन, मूत्रल, वाजीकरण, आर्तवजनन तथा कुष्ठ, कण्डू रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, रजोरोध, नपुंसकता, मुखरोग एवं मस्तिष्क और नेत्ररोगों में लाभकारी है। श्वेत चमेली पीत की अपेक्षा कुछ अधिक उष्ण और खुश्क होती है।

पत्र–कड़ुवे, व्रणशोधक, कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न, मुखरोग

नाशक, दांतों को दृढ़ करते हैं। मुख रोगों में इसके क्वाथ से कुल्ले कराते, दंतशूल तथा दंतदौर्बल्य में पत्रों को चबाते हैं।

कण्डू, कुष्ठ आदि त्वग्दोषों पर पत्र और पुष्पों का लेप करते हैं। कर्णशूल एवं दुर्गन्धयुक्त कर्णपूय में पत्रों से सिद्ध तैल को कानों में डालते हैं। यह तैल व्रणशोधन एवं रोपण के लिये लगाते हैं। व्रणों को पत्र–क्वाथ से धोते हैं। मूत्राघात तथा रजोरोध में पत्र व पुष्पों का लेप बस्तिप्रदेश पर करते हैं। मुखपाक में सिरावेध तथा ऊर्ध्वजत्रुगतविकारों के विरेचन के समय इसके पत्रों को चबाना हितकर होता है[1]। व्रणरोपणार्थ पत्रों की पुल्टिस बनाकर भी बांधते हैं। उदरकृमि पर पत्रों को पानी में उबालकर पिलाते हैं, इससे मासिकधर्म भी साफ होता है। पैरों की फटी हुई बिवाई पर पत्रों का ताजा रस लगाते हैं।

(1) मुखपाक में– (जातीपत्रादिक्वाथ)– इसके पत्ते मंजीठ, दारुहल्दी, सुपारी, शमी वृक्ष की छाल, आमला और मुलैठी इनका क्वाथ कर शहद मिला गण्डूष (मुख में धारण कर कुल्ले) कराने से (मुखव्रण, मुख के छाले) कण्ठ रोगों[2] में उत्तम लाभ होता है। (बं0 से0) अथवा–

इसके पत्र, गिलोय, मुनक्का, धमासा, दारुहल्दी और त्रिफला के कुल्ले करने से भी लाभ होता है। (बं0 से0)

साधारण मुखपाक पर–पत्तों को चबा–चबाकर थूकते रहने से भी लाभ होता है, मुख के क्षतों की वेदना एवं मसूढ़ों की सूजन दूर होती है। अथवा इसके पत्ते, दारुहल्दी और त्रिफला इनके क्वाथ का गण्डूष धारण करें।

(2) दांतों के विकारों पर (जातीपत्रादि चूर्ण)–इसके पत्ते, पुनर्नवा की जड़, गजपीपल, पियाबांसा, कूट, बच, सोंठ, अजवायन, हरड़ और तिल समभाग लेकर खूब महीन चूर्ण कर थोड़ा–थोड़ा चूर्ण मुख में रखने या दांतों पर मलने से दंतपीड़ा, दांतों का हिलना, दुर्गन्ध, मसूढ़ों की सूजन, दर्द, दांतों की खुजली, कीड़े एवं घाव नष्ट होते हैं। (यो0 र0)

(3) उपदंश पर– इसके कोमल पत्तों के स्वरस 2 तोले में गाय का घृत 1 तोला (अथवा गोदुग्ध 2 तोले) और राल का चूर्ण 3 माशे तक मिला प्रातःकाल पीते रहने से शीघ्र ही 5 प्रकार के उपदंश रोग दूर होते हैं। (यो0 र0)

पत्र के क्वाथ से मूत्रेन्द्रिय के व्रणों को धोते रहें तथा निम्न जात्यादि तैल को लगाते रहें–

चमेली
(Jasminum Grandiflorum Linn.)

इसके पत्ते, हल्दी, दूधी (छोटी गोल पत्रों वाली जो जमीन पर फैलती है), इन्द्रायन की जड़ और मुलैठी 4–4 तोला लेकर पानी में पीस कल्क करें। फिर उसमें 1 सेर तिल तैल तथा उक्त द्रव्यों का 4 सेर क्वाथ मिला कर तैल सिद्ध कर लें। (ग0 नि0) रोगी को पथ्य में गेहूं की रोटी, घृत शक्कर या दूध भात का ही सेवन करना आवश्यक है।

(4) आर्तव शूल पर–पत्तों को पीसकर नाभि के नीचे बांधने तथा यदि मलावरोध हो तो मृदु विरेचन देने से लाभ होता व मासिकधर्म की रूकावट दूर होती है।

(5) वमन पर–पत्ररस में थोड़ी पीपल और काली मिर्च का चूर्ण तथा शक्कर व शहद मिला 2–3 बार 1–1 घंटे में चटाने से पुराना वमन–विकार दूर होता है। (ग0नि0)

(6) सन्निपात–ज्वर में जात्यादि क्वाथ–इसके पत्ते, आमला, नागरमोथा और धमासा इनका क्वाथ सन्निपात ज्वरनाशक है। ज्वर में दोष विबद्ध हों, रुके हुए हों, तो इस क्वाथ में गुड़ (क्वाथ से चतुर्थांश) मिला पिलावें। (च0चि0अ01)

(7) कास पर (जात्यादि धूम्रपान)– इसके पत्ते, मैनसिल, राल और गूगल समभाग लेकर, बकरी के मूत्र में पीसकर गोली बना चिलम में रखकर या अन्य किसी प्रकार से उसका धूम्रपान करने से खांसी नष्ट होती है। इसके धूम्रपान से कफ निकल जाता है व हृदय तथा कंठ का

1. मुखपाके सिरावेधः शिरःकायविरेचनम्।
कार्येचबहुधानित्यं जातीपत्रस्य चर्वणम्।। (भा0 प्र0)
2. अथवा कंठरोध (जब कंठ में मसूरिका के दाने निकल आवें) को भी यह दूर करता है। (भै0 र0) यह क्वाथ विशेषतः मसूरिका में होने वाले मुखपाक में उत्तम है।

अवरोध दूर होकर कास–श्वास में लाभ होता है। अथवा–

इसके पत्ते और जड़ तथा बेरी के पत्ते, मसूर, मैनसिल व गूगल समभाग पीसकर बत्ती बनावें। उसे बेरी के कोयलों की आंच पर जलाकर धूम्रपान करायें। (यो० र०)

(8) रतौंधी (नक्तान्ध्य) पर–जातिपत्र–रसांजन–इसके पत्रों का रस, शहद, हल्दी, रसौत और गाय का गोबर (गोबर का रस) समभाग लेकर चूर्ण–योग्य द्रव्यों (हल्दी व रसौत) का महीन चूर्ण कर सबको एकत्र मिला खूब खरल करें। इसे नेत्रों में आंजने से रतौंधी दूर होती है। (बं० से०)।

(9) नेत्र की फूली (शुक्ल) पर इसकी कोंपल व मुलैठी के चूर्ण को घृत में भूनकर मन्दोष्ण जल में पीस छान कर उसमें किंचित् कपूर घिसकर इसकी बून्दें नेत्र में टपकाने से फूली नष्ट होती है। (बं० से०)

इसके पत्तों को रेंड़ी पत्रों में लपेट उस पर मिट्टी का एक अंगुल लेप कर, पुटपाक कर इसके पत्रों का रस कांसे के पात्र में लेकर उसमें समुद्रफल को घिस आंजने से आंख का फरकना, खुजली, अधिमंथदि विकार नष्ट होते हैं। (यो० र०)

पुष्प–सौमनस्यजनन, मेध्य, वाजीकरण, मूत्रल, आर्त्तव–जनन हैं। नेत्ररोगों में–पुष्पों का लेप करते तथा उसका स्वरस नेत्रों में डालते हैं। सिरपीड़ा में–फूलों के रस को या फूलों को गुलरोगन के साथ पीसकर नस्य देते हैं। स्तम्भन के लिये फूलों को पीसकर शिश्न पर लेप करते हैं। मुख की झांई या व्यंग पर–पुष्पों को पीसकर लेप करते हैं। गर्भाशय से या मुख से रक्तस्राव होने पर फूलों का रस 1 से 3 तोले तक 3 दिन पिलावें। नेत्र की फूली पर फूलों की पंखुड़ियों को थोड़ी मिश्री के साथ खरल कर लगाते हैं।

(10) नेत्र के विकारों पर–(जाति पुष्पादि गुटिका) पुष्पों की कलियां, जवाखार और लाल चन्दन समभाग पानी के साथ पीसकर गोलियां बना लें।

इसे पानी के साथ पत्थर पर घिसकर नेत्रों में आंजने से कांच, तिमिर तथा पटल नाम के नेत्ररोग नष्ट होते हैं। (भा० भै० र०)

पित्तज और रक्तज नेत्र–रोगों पर– (जात्यादिवर्त्ती)– इसके पुष्प, जवाखार, शंख चूर्ण, त्रिफला, मुलैठी और खिरेंटी–मूल समभाग चूर्णकर आकाश जल में पीसकर बत्तियां बना लें। इसे आकाश जल में घिसकर आंजने से लाभ होता है। (बं० से०)

नेत्रपाक (आंख दुखने) पर– इसके फूल, सेंधानमक, सोंठ, पीपल के बीज (छोटी पिप्पली को रात्रि के समय दूध में भिगोकर प्रातः हाथों से मलने पर उसके छोटे–छोटे दाने निकल आते हैं) और बायबिडंग का सत (बिड़ंग को कूटकर 16 गुने जल में पकावें, चौथाई शेष रहने पर छानकर पुनः पकावें गाढ़ा हो जाने पर उतार कर शुष्क कर लें) ये सब समभाग महीन पीस, खरलकर सुरमा जैसा बना लें। इसे शहद में मिलाकर आंजने से अवश्य लाभ होता है। (भा० भै० र०)

तन्द्रानाशार्थ–इसके फूल और कोंपल, कालीमिर्च, कुटकी, बच व सेंधानमक समभाग का चूर्ण कर, बकरे के मूत्र में घोटकर आंख में लगाने से तन्द्रा का नाश होता है। (यो० र०)

(11) योनि दुर्गन्ध पर (जात्यादि घृत)– इसके फूल, मुलैठी तथा आम, जामुन, कैथ, बिजौरा और बेल के पत्ते समभाग लेकर, खूब महीन पीस, चार गुना गौ–घृत में मिला, धूप में रक्खें। 8–10 दिन बाद शीशी में भर कर रख लें। इस को लगाने एवं मालिश से योनि की दुर्गन्ध नष्ट होती है। (भा० भै० र०)

गर्भ निरोधार्थ–ऋतुकाल में इसकी 1 कली जल के साथ निगलने से गर्भ नहीं रहता।

(12) व्रण पर (जातिपुष्पादि लेप)–इसके फूल, मैनसिल, स्नुही (थूहर) का दूध, कसीस और चित्रक–मूल समभाग, पानी में पीसकर लेप करने से मृदु और उन्नत मांस वाले व्रणों का ऊपर उठा हुआ मांस दब जाता है। (बं० से०)

व्रणों पर 'जात्यादि घृत' आगे वि० योगों में देखें।

मूल वर्ण्य, वाजीकरण, वेदनास्थापन, विरेचन, कफनिःसारक, कृमिघ्न, निद्राप्रद और विषघ्न हैं।

वर्ण या कांतिवर्धनार्थ–इसकी जड़ को उबटन में मिला कर या अकेले ही पीस कर मर्दन करते हैं। 'शिरःशूल' या अन्य शूलों में मूल का क्वाथ कर परिषेक या लेप करते हैं। 'पक्षाघात, अर्दित' आदि वात–विकारों में मूल का लेप करते तथा तैल का अभ्यंग करते हैं। 'दाद, छाजन' पर इसे पीसकर लगाते हैं।

(13) मूत्रदाह पर–इसकी जड़ को बकरी के दूध में पीस छान कर पिलाते तथा इसके फलों को, पीसकर मूत्राशय पर बांधते हैं।

(14) जीर्णज्वर पर–मूल 6 मा० कुचल कर दूध और पानी 1–1 पाव में मिलाकर पकावें। दूध शेष रहने पर दिन में 2–3 बार पिलावें।

(15) ध्वजभंग आदि पर– 'ध्वजभंग पर' मूल का लेप शिश्न पर करते हैं।

उदावर्त और आनाह पर–मूल का क्वाथ पिलाते हैं। इस क्वाथ से कुष्ठ में भी लाभ होता है।

पंचांग–इसके पंचांग के क्वाथ का सेवन करने से मासिकधर्म साफ होता तथा प्लीहा एवं यकृत् की क्रिया में

सुधार होता है।

नोट–मात्रा–क्वाथपंचांग 2–5 तोला क्वाथ पुष्प 2 तोला तक। पत्र रस 3–10 बूंद चूर्ण पुष्प 1–3 मा0। अधिक मात्रा में उष्ण प्रकृति वालों के लिये अहितकर है। हानि निवारणार्थ, गुलाब पुष्प, गुलबनफशा। यदि इसके सेवन से सिरदर्द पैदा हो, तो गुलाब का तैल और कपूर का लेप करें।

विशिष्ट योग–

(1) रोगन चमेली– (चमेली का तैल) तिलों को इसके पुष्पों में बसाकर, कोल्हू में पेर कर तैल निकाला जाता है। यह तैल कड़वा, वृद्धों के लिये हितकर, प्रदाहशामक, त्वचामृदुकर, मस्तिष्क के लिये पौष्टिक, कामोत्तेजक, कृमिघ्न है। कर्णपीड़ा और व्रणों पर लाभकारी है। पक्षवध, अर्दित, आमाशय एवं गृध्रसी में इस की मालिश करते हैं। सिर में लगाने से मस्तिष्क को तरावट तथा शक्ति देता है। किन्तु इसके अधिक लगाते रहने से केश श्वेत होने की संभावना है। भ्रम, मूर्च्छा आदि में तैल को सिर पर मलते हैं।

(2) जात्यादि तैल–दन्तव्रण नाशक–इसके पत्ते, मैनफल, कटेली, छोटे गोखुरू, मजीठ, लोध, खैर और मुलैठी के क्वाथ के साथ (क्वाथ के लिये प्रत्येक द्रव्य 10 तोला पानी एक सेर में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध करें) आधा सेर तिल तैल मिला पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रक्खें। इस तैल की कुछ बूंदें दोनों ओर मसूड़ों पर लगाने से दांतों का नाड़ीव्रण दूर होता है। तथा पायोरिया में भी यह लाभप्रद है। (बं0 से0)

चमेली के पत्तों के रस में उससे चौथाई तैल मिला कर पकालें। इसे कान में डालने से पूतिकर्ण रोग नष्ट होता है। (बं0 से0)

नोट–जात्यादि तैल के अन्य प्रयोग, भावप्रकाश, शारंगधर आदि ग्रन्थों में देखिये। एक और उत्तम चर्मरोग नाशक इसके तैल का प्रयोग इस प्रकार है–

इसके पत्तों के साथ समभाग नीमपत्र, पटोल–पत्र, करंजपत्र; मोंम, मुलैठी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मजीठ, पद्माक, लोध, हरड़, नीलकमल, तूतिया, अनन्तमूल और करंज बीज इन सबको पानी में पीस कल्क करें। फिर इस कल्क के समभाग काले तिल का तैल तथा उससे चौगुना इसके (चमेली) के पत्तों का रस एकत्र मिला मंद आँच पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान कर रक्खें। इसके लगाने से सर्व प्रकार के जहरी घाव, खाज, खुजली, अग्निदग्ध की दाह, मर्मस्थान के व्रण आदि में शीघ्र लाभ होता है। (ब0 चं0) किन्तु इस तैल की अपेक्षा निम्न जात्यादि घृत और भी श्रेष्ठ लाभदायक है।

(3) जात्यादि घृत– उक्त तैल के प्रयोग के ही सब द्रव्य (केवल करंजपत्र, कूठ, पद्माक, लोध और हरड़ को छोड़कर) 1–1 तो0 लेकर (मोंम को अलग रख) कल्क कर गौघृत 65 तो0 और पानी या इसका पत्ररस घृत से चौगुना एकत्र पकावें, घृत मात्र शेष रहने पर छानकर रख लें। इसका मलहम बनाना हो, तो उक्त मोंम को पिघला कर घृत में मिला दें यह जात्यादि मलहम बन जावेगा। उक्त प्रयोग में चमेलीपत्र रस के लिये, पत्रों को पानी के साथ पीस छानकर रस निकाल लेना चाहिए।

यह घृत या मलहम, मर्म–स्थानों के व्रण, पूययुक्त घाव तथा गहरे, पीड़ायुक्त और जिनका मुख छोटा हो ऐसे व्रण एवं नाड़ी व्रण (नासूर) को शुद्ध कर भर देता है। (मै0 र0)

चम्पा (पीला) (Michelia Champaca)

पुष्प–वर्ग एवं अपने चम्पक कुल (Magnoliaceae) का यह मंझले या बड़े कद का, सदैव हरा रहने वाला, सुन्दर वृक्ष बाग–बगीचों में लगाया जाता है। शाखाएं खड़ी, फैली हुई तथा पास–पास होती हैं; छाल–बाहर से धूसर, भीतर रक्ताभ; पत्र–एकान्तर, 8–10 इंच लम्बे, 2–4 इंच चौड़े, चिकने, चमकीले, तीक्ष्णाग्र; पत्रवृन्त छोटे व मोटे; पुष्प–वसन्त, बैसाख मास से लेकर वर्षा काल तक, फीके या गहरे पीतवर्ण के, 2–3 इंच लम्बे, 1–2 इंच व्यास के, महीन केशर युक्त 4–5 या अधिक पंखड़ी वाले, भ्रमर नाशक, मन्द उग्र सुगन्धयुक्त (इसकी मादक गन्ध के कारण कहा जाता है कि भौंरा इसके पास नहीं जाता); फल–गोल–गोल छोटे–छोटे, फलों का एक संगठित गुम्बजाकार गुच्छ सा पुष्प–कोषों से अलग निकलता है। कई वृक्षों में फूलों के झड़ जाने के बाद अत्यधिक फल आते हैं। ऐसे वृक्षों में फिर कई वर्षों तक पुष्प नहीं आते। ये फल प्रायः शीतकाल में पक जाते हैं। इन फलों में श्यामाभ लाल वर्ण के गोल बीज तन्तुओं पर लटके हुए होते हैं। वृक्षों की उत्पत्ति इन बीजों से ही होती है। बीजों से जो तैल निकाला जाता है, वह गाढ़ा होता है।

इसके वृक्ष बंगाल, आसाम, ट्रावणकोर, नीलगिरी, नेपाल, वर्मा में अधिक होते हैं और भी कई स्थानों में ये लगाये जाते हैं; विशेषतः मालवा में ये पेड़ अधिक देखे जाते हैं।

इसके कई भेद हैं, जैसे श्वेत (पीला) चम्पा (Michelia Nilgarica), अंग्रेजी में हिल चंपा (Hill Champa) आदि। यह

ऊंचे पहाड़ों पर, दक्षिण भारत के पश्चिमी घाटों, नीलगिरी तथा सीलोन के पहाड़ों पर अधिक होता है। इसका पत्ता पतला, श्वेत रंग का। शाखाएं और पत्ते उक्त पीले चम्पा जैसे। फूल– श्वेत फीके रंग के। इसकी फलियां लम्बी और मुलायम लगती हैं, तथा बीज लाल होते हैं।

इसमें एक उड़नशील तथा स्थिर तैल, चरपरी राल, टेनिन, शर्करा, स्टार्च, कैलशियम आक्जलेट (Calcium Oxalate) एक कटु तत्व आदि पदार्थ पाये जाते हैं। इसकी छाल के फाण्ट या क्वाथ का प्रयोग, उक्त पीली चम्पा के जैसा ही ज्वरनाशनार्थ किया जाता है। शेष गुण धर्म भी वैसे ही हैं।

इसका ही एक भेद कनकचम्पा और होता है, जिसे शायद लेटिन में माइनीलिया हीड़ी (M. Rheedi) कहते हैं। इसके भी पेड़ उक्त चम्पा जैसे, तना पतला, पत्ते का निम्न पृष्ठ भाग झालरदार एवं रोमयुक्त, फूल लगभग 5 इंच लम्बे, पांच सकरी (विशेष चौड़ी नहीं) पंखुड़ी वाले, श्वेत रंग के होते हैं। फूल के खिलने पर ये पांचों पंखुड़ियां पृथक होकर पीछे की ओर मुड़ जाती हैं। फल–पांच उभरी हुई धारियों से युक्त, ऊपरी छिलका नसवारी रंग का होता है, पक कर फटने पर उसमें से कुछ बड़े धूसर वर्ण के बीज बाहर आ जाते हैं। गुणधर्म अधिकांश में उक्त चम्पा जैसे ही हैं। विशेषता यह है कि इसके पत्तों के निम्न भाग की रोमावली को ताजे व्रण पर लगाने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है। छाल की राख चेचक के व्रणों के रोपणार्थ प्रयुक्त होती है। फूल पौष्टिक हैं, तथा शोथ, व्रण, कुष्ठ एवं ग्रन्थि रोगों पर प्रयुक्त होते हैं। इसके पेड़ हिमालय की उपत्यका एवं पहाड़ियों पर लगभग 4 हजार फुट की ऊँचाई तक होते हैं ये काली चिकनी मिट्टी की भूमि में खूब उगते हैं।

एक माइनीलिया किसोपा (M. kisopa) तथा एक माइनीलिया एक्सेल्सा (M. Excelsa) लेटिन नाम के भी इसी की जाति के पेड़ होते हैं। छाल इनकी धूसर वर्ण की तथा पत्ते फूल आदि उक्त चम्पा जैसे ही होते हैं। ये प्रायः हिमालय की उपत्यका में ही पाये जाते हैं। गुणधर्म उक्त चम्पा जैसे ही हैं। एक लालचम्पा भी होता है, इसके पुष्प श्यामाभलाल होते हैं।

एक सुलतान चम्पा भिन्न जाति का होता है। वर्णन 'पुन्नाग' के प्रकरण में देखें।

नाम–

सं0–चम्पक, हेमपुष्प, चाम्पेय इ.। हिं0–चम्पा, नागचम्पा, चामोटी इ0। म0–सोन चांफा। गु0–पीली चम्पा। बं0–चम्पक। अं0–गोल्डन चम्पा (Golden Champa) ले0–माइनीलिया चम्पक।

रासायनिक संघटन– छाल में एक उड़नशील तथा एक स्थिर तैल, राल, टेनिन, पिच्छिल द्रव्य, स्टार्च, शर्करा आदि, फूल में एक उड़नशील सुगन्धित तैल होता है।

प्रयोज्य अंग–छाल, पुष्प, पत्र, बीज तथा दूध।

गुणधर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, तिक्त, कटु, कषाय, मधुर, विपाक में कटु, शीतवीर्य तथा कफपित्त शामक, रोचन, दीपन, आम–पाचक, अनुलोमन, दाहप्रशमन, त्वग्दोषहर, कफघ्न, रक्तशोधक, मूत्रल, बल्य, विषघ्न, हृद्य, व्रणशोधन रोपण है। यह रक्तपित्त, कास, कृमि, कुष्ठ अरुचि, अग्निमांद्य, शूल, आध्मान, उपदंश, गंडमाला, शोथ, आमवात आदि नाशक है।

चम्पा (पीला)
(Michelia Champaca Linn.)

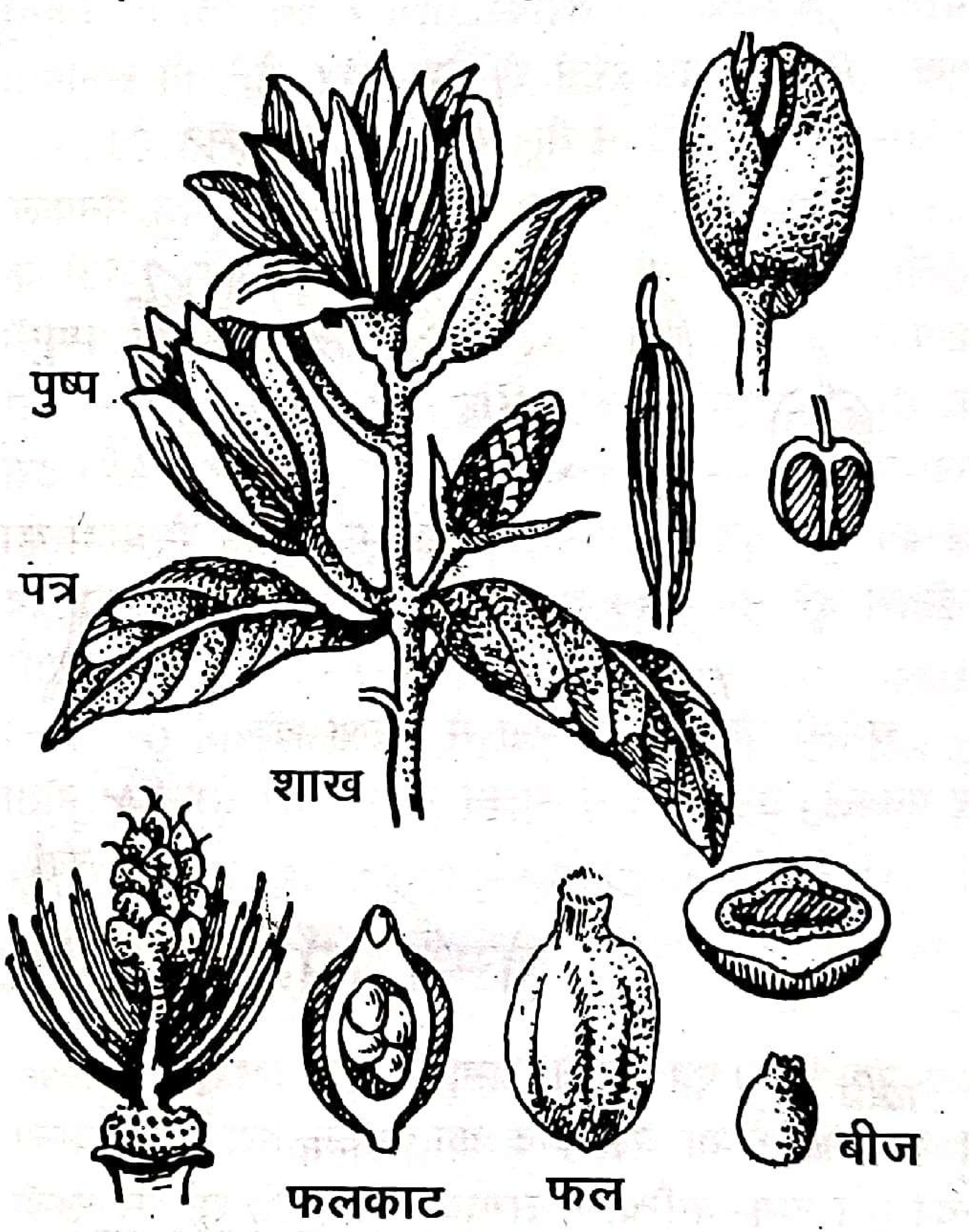

छाल और मूल– कड़वी, कसैली, चरपरी, विपाक में मधुर शीतवीर्य, शोथहर, गर्भाशय–उत्तेजक, रसायन, व्रण–शोधन, कृमिघ्न, व ज्वरघ्न हैं। इसकी क्रिया चोबहयान (Guaicum officinalis) जैसी होती है। यह चोबेहयान के प्रतिनिधि रूप में ली जा सकती है। नियतकालिक ज्वर में तथा कण्डू, कुष्ठ चर्मरोग, व्रण, शिरःशूल आदि में इसकी छाल का फांट, क्वाथ, चूर्ण व लेप आदि का प्रयोग किया जाता है। यह हृद्य एवं त्रिदोषघ्न है। गठिया की पीड़ा पर इसका लेप करते हैं। बहुमूत्र पर–छाल का क्वाथ देते हैं।

शुष्क कास में–छाल के चूर्ण को मधु से चटाते हैं। अतिसार में इसकी छाल और अतीस के चूर्ण का मिश्रण थोड़ी 2 मात्रा में जल के साथ देते हैं। दिन में 3–4 बार देने से ज्वर सहित आमातिसार तथा पक्वातिसार में भी लाभ होता है।

(1) विषम ज्वर पर–छाल 2½ तो0 जौकुट कर 100 तोले पानी में पकावें। आधा शेष रहने पर छान कर, इसे ज्वर के पूर्व 5–7 तो0 तक पिलावें। इस प्रकार 2–2 घंटे से, देने पर नियतकालिक मियादी ज्वर नष्ट हो जाता है।

(डॉ0 मुडीन शरीफ)

अथवा–छाल के मोटे चूर्ण का फाण्ट बनाकर सेवन करावें या इसका महीन चूर्ण 5 से 15 रत्ती की मात्रा में जल के साथ देते रहें। जीर्ण ज्वर में भी यह प्रयोग दिया जाता है। फाण्ट की विधि वि0 योगों में देखें।

कुष्ठ आदि चर्मरोगों पर–छाल चूर्ण 3 माशे तक दिन में 3 बार जल के साथ, 2 से 6 मास तक सेवन करने से रक्तशुद्धि व कीटाणुनाशक होकर सब प्रकार के त्वचा रोग दूर हो जाते हैं। दाद, व्युची, पामा, कच्छू, सिध्म, किलास (श्वेत कुष्ठ), विचर्चिका, चर्मदल (हाथ–पैरों के तलवों में जलनयुक्त खुजली), विपादिका आदि विकार दूर होते हैं। यह सामान्य औषधि होते हुये अति दिव्य गुणकारी हैं।

(गां0 औ0 र0)

(3) कंठ की ग्रन्थि–शोथ पर–वृद्ध मनुष्यों की ग्रसनिका–ग्रन्थियों (Tonsils) की वृद्धि हो जाने पर, छाल चूर्ण मुख में रखकर रस निगलते रहें। छाल की मात्रा पूरी देवें, जिससे 1–2 दस्त लग जाय तो अच्छा है। जिस प्रकार बालकों की उक्त ग्रन्थियों की वृद्धि में बच्छनाग गुणकारी है, वैसे ही वृद्धों के लिये चम्पा की छाल हितकर है।

(गां0 औ0 र0)

मूल एवं मूल की छाल–विरेचन, आर्त्तवजनन, गर्भाशयोत्तेजक है। नारू पर–मूल को पानी में पीस–छानकर पिलाते हैं।

(4) कष्टार्त्तव पर–मूल–छाल की चाय (फाण्ट) बनाकर पीने से आर्तव साफ हो जाता है। थोड़ी मात्रा में पीवें, अन्यथा विरेचन या अतिसार होने की सम्भावना है।

(5) व्रण पर–सूखी जड़ एवं उसकी छाल के चूर्ण को दही में मिला, पूययुक्त फोड़े पर बांधने से वह अच्छी तरह पक जाता या बैठ जाता है।

(6) वृक्काश्मरी पर–मूल और इसके पुष्प को बकरी के दूध में पीस–छान कर पिलाते हैं।

पुष्प–कडुवे, दीपन, मूत्र–निःसारक, आध्मान नाशक, उत्तेजक, आक्षेप निवारक, पित्त–विकार नाशक, हृद्य, कफ निःसारक, कण्डू, कुष्ठ, चर्मरोग और व्रण में लाभकारी हैं। मूत्रकृच्छ्र तथा पूयमेह में इनका प्रयोग करते हैं। दाह–प्रशमन होने से दाह पर पुष्पों का लेप करते हैं। कर्णपीड़ा पर–पुष्प रस किंचित् गरम कर कान में डालते हैं। मुख या चेहरे की झांई, कलौंछ पर फूलों की कलियों को पानी या नींबू रस में पीसकर लगाते हैं। मूत्रकृच्छ्र में–फूलों को पानी के साथ पीसकर ठंडाई की तरह पिलाते हैं। सिरदर्द पर–पुष्पतैल (वि0 योग में देखें) को सिर पर लगाते हैं। संधिवात पर पुष्पतैल की मालिश कर ऊपर इसके पत्ते बांधते हैं। उदरपीड़ा पर फूलों का क्वाथ पिलाते हैं। पित्तोन्माद में ताजे फूलों को पीसकर शहद से चटाते हैं। व्रण पर फूलों के कल्क की पुल्टिस बना बांधने से वह फूट कर शीघ्र सुधर जाता है।

(7) सुजाक (पूयमेह) पर– फूलों का फाण्ट दिन में 3 बार पिलाते रहने से, मूत्र की जलन दूर होती व कीटाणु नष्ट होकर भीतर का घाव भर जाता है। रोग दूर होने पर भी कुछ दिनों तक इसका सेवन करें। फिर गिलोय, गोखुरू व आंवलों के चूर्ण (रसायन चूर्ण) का सेवन 4–6 मास तक करते रहना चाहिये, क्योंकि सुजाक की जड़ शीघ्र दूर नहीं होती।

(8) उदर–कृमि पर– फूलों का स्वरस शहद मिलाकर दिन में 2 बार देते रहें। इससे कृमि निकल जाते हैं। और भावी उत्पत्ति रुक जाती है। (गां0 और र0)

(9) वाजीकरणार्थ–पुष्प तैल की मालिश शिश्न पर करते तथा चम्पक पाक का भी सेवन करते हैं। तैल और पाक की विधि–वि0 योगों में देखिये।

(10) प्रतिश्याय में–वि0 योगों में 'चम्पकासव' देखें।

(11) वातप्रकोप पर– वातप्रकोप की दशा में जब शरीर के कई स्थानों पर रह–रह कर शूल, वेदना एवं शून्यता हो, तो इसके फूलों के तैल को कुछ गरम कर मालिश करावें तथा फूलों का फाण्ट दिन में 3 बार देवें।

पत्र–शीतल, मूत्रल, कफ, कास, पित्तप्रकोप, मूत्रकृच्छ्र, रक्तविकार एवं कृमि में लाभकारी हैं। उदरशूल में–पत्रचूर्ण या पत्रस्वरस मधु के साथ देते हैं।

(12) उदरकृमि पर–ताजे कोमल पत्तों का रस 2 तो0 में थोड़ा शहद मिलाकर पिलाते हैं।

(13) प्रसूता के उन्माद एवं प्रलाप पर–पत्तों पर घृत चुपड़ कर उस पर जीरा चूर्ण बुरक कर प्रसूता स्त्री के सिर पर बांधते हैं। ऐसे दिन–रात में 4 बार बांधते रहने से लाभ होता है।

(14) नेत्रों के धुंधलेपन पर–कोमल पत्रों को पीसकर थोड़ा जल मिलाकर छान लें तथा नेत्रों में दिन में 2 बार टपकावें। नेत्र–ज्योति निर्मल होती है।

बीज–इसके बीजों को कोल्हू में पिरवा कर तैल निकाल लें। यह तैल मूत्रल, उदर–वात नाशक है तथा हाथ, पैर की त्वचा पर लगाने के काम आता है।

(15) उदर वात या पेट में गैस (gas) के होने पर–इसके तैल की मालिश पेट पर करें तथा ऊपर से इसके पत्ते कुछ गरम कर बांध देवें। ऐसे बार–बार करने से पूर्ण लाभ होता है।

(16) पैरों की पाद–दारी या बिवाई पर–उक्त तैल की मालिश करते या बीजों को पीसकर लेप करते हैं।

दूध–इसके वृक्ष के तने को छेदने से या पत्तों को तोड़ने पर जो कुछ दूध सा निकलता है, वह स्फोटक है।

(17) इस दूध को न फूटने वाले फोड़े पर या पच्यमान विद्रधि पर लगाने से वह शीघ्र फूट जाती है। फिर उस पर उसके फूलों की पुल्टिस बांधते रहने से शीघ्र आराम हो जाता है।

नोट–मात्रा पुष्प चूर्ण 1–2 मा0। पत्र स्वरस– 1 से 1½ या 2 मा0। छालचूर्ण 5 से 15 रत्ती। छाल क्वाथ– 2–5 तो0। छाल रस– 1–2 मा0। बीज तैल 10–20 बूंद।

विशिष्ट योग–

(1) चंपक फाण्ट–इसकी छाल के मोटे चूर्ण 2½ तो0 को उबलते हुए पानी में डाल नीचे उतार कर उसी में मिला कर ढांक देवें। शीतल होने पर छान लें। मात्रा–2 से 5 तो0 तक दिन में 2–3 बार देने से विषम ज्वर, कफ–प्रकोप, मूत्रावरोध, कष्टार्त्तव, सुजाक में लाभ होता है। यह त्रिदोषशमन एवं रक्त प्रसादन है।

(2) चम्पकादि चूर्ण–(पांडु, प्रमेहादि नाशक) चम्पा फूल, श्वेत चंदन, पित्तपापड़ा, पद्माक, मजीठ, अतीस, मोचरस, अडूसा, इन्द्र जौ, छोटी पीपल, नागकेशर, धाय फूल, पाठा, मोथा, सोंठ, बेलगिरी, नीलोफर, अनारदाना, जामुन की गुठली, दालचीनी, कूठ, इलायची, लाल चन्दन, उर्द, रसौत व तालीसपत्र 1–1 भाग, खस 2 भाग तथा मिश्री सबसे चौगुनी लेकर सबका चूर्ण कर लें। मात्रा–6 मा0 तक, (रोग की उग्रावस्था में 1 तो0 तक) उचित अनुपान के साथ देने से हारिद्रक, पांडु रोग, प्रमेह, रक्तपित्त, कास, श्वास, हिक्का एवं भयंकर मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है। (यो0 र0)

(3) चम्पकादि चूर्ण (ज्वर आदि नाशक)–चम्पे की छाल, गिलोय, अतीस, सोंठ, चिरायता, कालमेघ, (अभाव में हरा चिरायता), नागरमोथा, छोटी पीपल, जौखार और कसीस समभाग महीन चूर्ण। मात्रा–1 से 2 मा0 तक, 3 बार पानी के साथ लेने से मलेरिया ज्वर, यकृत्, प्लीहावृद्धि, पांडुरोग, अग्निमांद्य, अरुचि आदि में लाभकारी है।

(4) चम्पक-पुष्प-तैल–पुष्पों को 16 गुने तिल तैल में मिला, चीनी मिट्टी या कांच के पात्र में डालकर मुख–मुद्रा कर 7 दिन तक धूप (सूर्यताप) में रख, निकाल कर निचोड़ लें, फिर उस तैल में पुनः दूसरे ताजे पुष्प मिलाकर, मुख–मुद्रा कर धूप में 7 दिन रखने के बाद छानकर तैल को बोतलों में भर रक्खें।

कोई–कोई केवल 12 घंटे ही पात्र को धूप में रख, निचोड़ कर छान लेते हैं। यह उक्त तैल की अपेक्षा सौम्य होता है।

यह तैल मस्तिष्क के विकारों पर, नेत्रशोथ, नाक से दुर्गन्धित मल रूप कफ के विपुल प्रमाण में निकलने पर, गठिया, संधिवात, मूर्च्छा आदि में मर्दन के काम आता है। वाजीकरणार्थ या शिश्न को सशक्त करने के लिए इसकी मालिश शिश्न पर की जाती है।

(5) चम्पा पाक– इसके 21 फूलों को, खौलते हुए पानी में धोकर, महीन पीस कर गौदुग्ध दो सेर में मिला पकावें। खोया जैसा हो जाने पर, नीचे उतार कर उसमें कौंच-बीज, बादाम गिरि, चिरोंजी, मुनक्का, पिस्ता महीन कतर कर 2–2 तो0 तथा तमालपत्र, छोटी पीपल, जावित्री, इलायची, मालती, गोखुरू, रूमीमस्तंगी और लौंग 1–1 तो0 सबका महीन चूर्णकर उक्त खोये में अच्छी तरह मिला दें। फिर 1 सेर शक्कर की चाशनी में सबको मिला, उसमें 5 तो0 घृत और 1 तो0 अफीम का चूर्ण मिला खूब घोटकर नीचे उतार लें; तथा कस्तूरी 3 मा0, भीमसेनी कपूर 8 रत्ती, केशर 6 मा0 और पंजाबी सालम मिश्री का चूर्ण 5 तो0 मिला, 2 मा0 के मोदक या गोलियां बना लें।

प्रतिदिन स्वबलानुसार प्रातः–सायं गोलियों का सेवन कर ऊपर से धारोष्ण गौदुग्ध पान करने से प्रबल कामशक्ति की जागृति होती है, शरीर पुष्ट होता तथा चाहे जितना परिश्रम करें थकावट नहीं होती है।

(जंगल की जड़ी–बूटी, व0 चं0 से साभार)

नोट–पाक के अन्यान्य उत्तमोत्तम प्रयोग 'वृ0 पाक संग्रह' में देखिये। उक्त पाक की पूर्ण विधि भी उसमें देखिये।

(6) चम्पकासव–इसके छाया शुष्क फूल 2½ सेर को 13 सेर जल में पकावें। 7 सेर क्वाथ शेष रहने पर, छान कर शुद्ध मटके में भरें। ठण्डा हो जाने पर उसमें मधु 4 सेर, धाय फूल 1 पाव तथा अतीस, काकड़ासिंगी व छोटी पीपल का चूर्ण 4–4 तो0 मिला, सन्धान कर 15–20 दिन सुरक्षित रक्खें। फिर छानकर बोतलों में भर रक्खें। मात्रा– 1 से 2½ तो0 सेवन से जुकाम, सर्दी, कोष्ठबद्धता दूर होती है, क्षुधावर्धक है।

अन्य योग–वृ0 आसवारिष्ट संग्रह में देखें।

चम्पा (श्वेत) (Plumeria Acutifolia)

कुटज–कुल (Apocynaceae) के इसके वृक्ष छोटी जाति के, साधारण ऊंचे तथा बहुत कमजोर होते हैं, शाखाएं थोड़े ही झटके से टूट जाती हैं एवं प्रायः सर्वांग में दूध जैसा रस होता है। शाखा की अण्टीकलम (गुट्ठी) जमीन में गाड़ देने से ही वह लग जाती है, वृक्ष पैदा हो जाता है। छाल–मटियाली भूरे रंग की; पत्र–आम्रपत्र जैसे किन्तु अधिक लम्बे, दलदार, हरे रंग के; फूल– वसंत ऋतु में, दलदार 5 पंखुड़ीयुक्त, ऊपर से श्वेत, कुछ लाल आभायुक्त, किसी–किसी में लाल आभा भी नहीं होती है। भीतर से सुन्दर कुछ पीले वर्ण का होता है। फूलों को सूंघने से हल्की मीठी सुगन्ध आती है। इसके पुराने वृक्ष में क्वचित् कहीं–कहीं फलियां लगती हैं।

इसके वृक्ष की कलम भारत में प्रायः सर्वत्र बागों में लगाई जाती है। दक्षिण भारत के समुद्रतटवर्ति प्रदेशों में ये वृक्ष प्रचुरता से पैदा होते हैं।

नोट– इसी के कुल का, इसकी ही एक जाति तथा रूप रंग एवं गुणधर्म में इसके समान ही एक खैर चम्पा (P. Acuminata) होता है, इसे लेटिन में प्लुमेरियाआलबा (P. Alba) भी कहते हैं।

नाम–

सं0–क्षीर चम्पक, श्वेत चम्पक। हि0–सफेद चम्पा, गुलाचीन, गुलचीन, खुरचम्पा, गोबरचम्पा, इ0। म0–पौढरा चम्पा, खुरचम्पा। गु0–हाड़ चम्पा। बं0–गोरुर चांपा, गरुड़ चांपा। अं0–जसमाईनट्री (Jasminetree) ले0– प्लुमेरिया एक्युटिफोलिया।

रासायनिक संघटन– इसमें अगोनियाडिन (Agonidsin) नामक एक कड़ुवा ग्लुकोसाइड, उड़नशील तैल, प्लुमेरिक एसिड (Plumeric acid) आदि पाये जाते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग–

कटु, तिक्त, कषाय, उष्ण वीर्य, सारक एवं कंडू, कुष्ठ, व्रण, शूल, वातदोष, उदर शोथ तथा आध्मान आदि नाशक है।

छाल–कड़वी, तीक्ष्ण, तीव्र विरेचक, मूत्रल, शोथ, वात एवं पार्यायिक ज्वर-प्रतिबन्धक है। रक्तविकार जन्य रोग तथा उपदंशादि में–छाल का क्वाथ पिलाते हैं। इसके क्वाथ से प्रारम्भ में दस्त अधिक आते हैं, फिर पेशाब खुलकर होने लगता है। जड़ की छाल तीव्र विरेचक है। अत्यधिक विरेचन हो एवं शरीर में गर्मी मालूम हो, तो छाछ (तक्र) पिलाने से शांति प्राप्त होती है। विरेचनार्थ–छाल के चूर्ण को नारियल के गिरी के साथ खिलाते हैं तथा विरेचन की शांति के लिये घृत और चावल खिलाते या तक्र पिलाते हैं। छाल का क्वाथ–जलोदर में पिलाते हैं। बदगांठ और शोथ पर–छाल को पीसकर, लेप या प्लास्टर जैसा लगाकर ऊपर इसके गरम पत्ते बांधते हैं या पत्तों का सेंक या बफारा देते हैं। छाल का उपयोग सुजाक में भी किया जाता है।

गलत्कुष्ठ पर– ताजी छाल 1 तो0 व 11 या 15 कालीमिर्च दोनों को खूब महीन पीस, 8–10 तो0 जल में घोल–छान कर प्रातः पिलावें। प्रथम हृल्लास होकर वमन–विरेचन होंगे, वेग कम होने पर कोमल प्रकृति वाले को मूंग की दाल व पुराने चावल की खिचड़ी में अधिक घृत मिलाकर खिलावें, या गेहूं व चने का हरीरा अधिक घृत मिलाकर दें और कुछ भी न दें। औषधि एक ही समय प्रातः देवें। क्षुधा अति दीप्त होकर पाचन क्रिया में सुधार होता है। घृत 15 से 40 तो0 तक पच जाता है। घृत की बाहुल्यता से औषधि का तेज बढ़ता व शरीर शुद्ध हो, कान्तिमान, तेजस्वी बनता है।

ध्यान रहे–यदि दोष–प्राबल्य शरीर के ऊर्ध्व भाग में हो, तो इस वृक्ष की छाल जड़ की ओर से ऊपर की ओर छील कर उतारी हुई काम में लावें, इससे विशेषतः वमन द्वारा दोष–निवृत्ति होती है। यदि अधोभाग में दोष–प्राबल्य हो, तो ऊपर की ओर से जड़ की ओर छीलकर उतारी हुई छाल ग्रहण करें, विरेचन के द्वारा दोष दूर होंगे। यदि सर्वांग में दोष–प्राबल्य हो, तो दोनों ओर से उतारी हुई छाल लेवें, जिससे वमन विरेचन दोनों हों।

पंचांग से तैल सिद्ध कर व्रणों पर लगाने से शीघ्र लाभ होता है। इससे बनाई हुई रौप्य भस्म अति गुणकारी है। –(रसतन्त्रसार सि0 यो0 संग्रह)

फूल–फिरंग (उपदंश) में–फूलों का चूर्ण 9 माशे तक पानी के साथ, या फूलों को पानी में पीस-छान कर पिलाते हैं। मलेरिया या शीत ज्वर में–फूल की कली डंठल सहित पान के 3 बीड़ों में रखकर, ज्वर–वेग के पूर्व 1–1 घण्टे से खिलाने से ज्वर रुक जाता है। अथवा–खिले हुए पुष्पों की डंठल अलग कर पान के बीड़ों में खिलाते हैं।

दूध–वृक्ष का रस या दूध–दाहक, त्वचा पर लगने से जलन करने वाला, रेचन, कण्डू आदि नाशक है। इसका दूध 4–6 रत्ती तक शक्कर के शर्बत के साथ देने से पानी जैसे पतले दस्त होते हैं तथा उन में बहुत पित्त निकलता है। अतः इसका प्रयोग बहुत कम किया जाता है। किन्तु यह दुग्ध महारोग (गलत्कुष्ठ पर) उत्तम लाभदायक है। दूध के घनसत्व की गोलियां 4 से 6 रत्ती की मात्रा में बना लें और दूध के साथ प्रातः सेवन करावें। गुड़, दही, मांस व तैल के

पदार्थ से परहेज रक्खें। नीमपत्रों का आहार–विहार में उपयोग करें तथा नीम–पत्रों के बिछौने पर शयन करें। अवश्य लाभ होता है। (आयुर्वेद पत्रिका)

गठिया के दर्द पर–दूध को लगाते हैं।

दाद, खुजली पर–दूध में चंदन का तैल मिलाकर अथवा नारियल तैल और कपूर के मिश्रण में मिलाकर लगाते हैं। शीतवात से शरीर का कोई स्थान सुन्न हो जाने या स्पर्शहीन हो जाने पर इसे लगाते हैं, अथवा इसके पत्तों का सेंक या बफारा देते हैं।

पत्र–व्रण पर– पत्तों को पीसकर पुल्टिस बनाकर बांधते हैं। कड़े व्रण शोथ पर–पत्तों को बांधने या लेप करने से वह पक जाता है (बैठ जाता है)।

फली–साधारण सर्प विष नाशक है। कहा जाता है कि इसकी फली को पानी में औटाकर पिलाने से या पानी में पीस–छान कर पिलाने से सर्प विष शीघ्र उतर जाता है। किन्तु ये फलियां बहुत ही कम मिलती हैं। अतः ये यदि कहीं प्राप्त हो जायं तो इन्हें दूध में उबाल कर रखने से बहुत दिन तक नहीं बिगड़तीं। इसकी फली पुरानी को पानी में पीसकर पिलाने से भी विष दूर हो जाता है।

नोट–मात्रा–चूर्ण 1–3 माशे तक।

यह उष्ण प्रकृति वालों के लिए हितकर है। इस की हानि–निवारणार्थ–छाछ और मक्खन का सेवन कराते हैं।

चम्बा–दे–मोगरा में। चरस–दे.–भांग में। चरेल–दे.–चिलबिल। चवन्नी गाछ–दे.–ममीरी।